श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद् ।

"कार्य्यसम्पादिका" भारतधर्मलक्ष्मी खैरीगढराज्येश्वरी महाराणी सुरथ कुमारी देवी O. B. E. एवं हर हाईनेस धर्म्म-सावित्री महाराणी शिवाकुमारी देवी, नरसिंहगढ़ ।

भारतवर्षकी प्रतिष्ठित रानी-महारानियों तथा विदुषी भद्र महिलाओंके द्वारा, श्रीभारतधर्म-महामण्डलकी निरीक्षकतामें, आर्यमाताओंकी उन्नतिकी सदिच्छासे यह महापरिषद् श्रीकाशीपुरीमें स्थापित की गई है। इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं :—

(क) आर्यमहिलाओंकी उन्नतिके लिये नियमित कार्य्यव्यवस्थाका स्थापन (ख) श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित पवित्र नारी-धर्मका प्रचार (ग) स्वधर्मानुकूल स्त्री शिक्षाका प्रचार (घ) पारस्परिक प्रेम स्थापित कर हिन्दुसतियोंमें एकताकी उत्पत्ति (ङ) सामाजिक कुरीतियोंका संशोधन और (च) हिन्दूओंकी उन्नति करना तथा (छ) इन्हीं उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये अन्यान्य आवश्यकीय कार्य करना ।

परिषद्के विशेष नियम—१म—इसकी सब प्रकारकी सभ्याओंको इसकी मुखपत्रिका आर्यमहिला मुफ्त मिलेगी। २य—स्त्रियाँ ही सभ्याएँ हो सकेंगी। ३य—यदि पुरुष भी परिषद्की किसी तरहकी सहायता करें तो वे पृष्ठपोषक समझे जायँगे और उनको भी पत्रिका मुफ्त मिला करेगी। ४र्थ—परिषद् की चार प्रकारकी सभ्याओंके ये नियम हैः—

(क) कमसे कम १५०) एकवार देनेपर "आजीवन-सभ्या" (ख) १०००) एक ही वार वा प्रतिमास १०) देने पर "संरक्षकसभ्या (ग) १२) वार्षिक देने पर सहायक सभ्या और (घ) ५) वार्षिक देनेपर वा असमर्थ होनेसे ३) ही वार्षिक देने पर "सहयोगिसभ्या" आर्यमहिला मात्र बन सकती है।

पत्रिका-सम्बन्धी तथा महापरिषत्सम्बन्धी सब तरहके पत्रव्यवहार करनेका यह पता हैः—

कार्याध्यक्ष—आर्यमहिला कार्यालय

तथा

आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषत्कार्यालय

श्रीमहामण्डल-भवन, जगतगंज, बनारस ।

श्रीविश्वनाथो जयति।

हठयोग संहिता।

भाषानुवाद सहित।
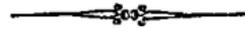
श्रीभारतधर्म महामण्डल प्रधान कार्यालय

से

श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभंडार

द्वारा

प्रकाशित।

पं० नारायणराव अग्निहोत्री

द्वारा

श्रीभारतधर्म प्रेस, काशीमें मुद्रित

संवत् १९७८ विक्रमी।

प्रथमवार १०००]   सन् १९२१ ई०।   [मूल्य ॥|) आना।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलके

सभ्यगण और मुखपत्रिका।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशीसे एक हिन्दी भाषाका और दूसरा अंग्रेजी भाषाका, इस प्रकार दो मासिकपत्र प्रकाशित होते हैं एवं श्रीमहामण्डलके अन्यान्य भाषाओंके मुखपत्र श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय कार्य्यालयोंसे प्रकाशित होते हैं, यथाः- फिरोजपुर (पञ्जाब) के कार्य्यालयसे उर्दू भाषाका मुखपत्र और मेरठ और कानपुरके कार्य्यालयोंसे हिन्दी भाषाके मुखपत्र।

श्रीमहामण्डलके पांच श्रेणीके सभ्य होते हैं, यथाः—स्वाधीन नरपति और प्रधान प्रधान धर्म्माचार्य्यगण संरक्षक होते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े ज़मींदार, सेठ, साहुकार आदि सामाजिक नेतागण उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं। प्रत्येक प्रान्तके अध्यापक ब्राह्मणगणमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डलके द्वारा चुने जाकर धर्म्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पांच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं, विद्यासम्बन्धी कार्य करनेवाले सहायक सभ्य, धर्मकार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल प्रान्तीय मण्डल और शाखा सभाओंको धनदान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्यादान करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और धर्म्मप्रचार करनेवाले साधु संन्यासी सहायक सभ्य। पाँचवीं श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य होते हैं जो हिन्दुमात्र हो सकते हैं। हिन्दु कुलकामिनीगण केवल प्रथम तीन श्रेणीकी सहायक सभ्या और साधारण सभ्या हो सकती हैं। इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय मण्डल, शाखा सभा और संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषाका मासिकपत्र विना मूल्य दिया जाता है। नियमितरूपसे नियत वार्षिक चन्दा २) दो रुपये देने पर हिन्दू नर नारी साधारण सभ्य हो सकते हैं। साधारण सभ्योंको विना मूल्य मासिकपत्रिकाके अतिरिक्त उनके उत्तराधिकारियोंको समाजहितकारी कोषके द्वारा विशेष लाभ मिलता है।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल, प्रधानकार्य्यालय,

जगत्‌गंज, बनारस।

सूचना।

——:0:——

श्रीभारतधर्म महामण्डलके सञ्चालकोंका यह सिद्धान्त है कि जब तक इस समयके उपयोगी आवश्यकीय ग्रन्थरत्नसमूह शुद्ध हिन्दीभाषामें प्रकाशित करके हिन्दीभाषाको पुष्टि न की जाय, जब तक हमारे आध्यात्मिक उन्नतिकारी बहुमूल्य ग्रन्थरत्नसमूह जो संस्कृत भाषामें है उनको विशुद्ध हिन्दीमें अनुवादित करके प्रचार न किया जाय और जब तक आजकलके देश काल पात्र उपयोगी और उपयुक्त रीतिपर धर्म्म प्रचार और धर्म्म शिक्षा उपयोगी यथा योग्य ग्रन्थ अपनी मातृभाषा हिन्दीमें प्रणीत होकर प्रकाशित न हों तब तक हिन्दूजातिका यथार्थ रूपसे कल्याण होना असम्भव है इस कारण विशेष पुरुषार्थके साथ श्रीभारतधर्म्म महामण्डलके आश्रयसे एक स्वतन्त्र कार्यविभाग द्वारा अनेक ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो रहे हैं। उसी कार्यविभाग द्वारा यह हठयोग संहिता नामक ग्रन्थरत्न प्रकाशित हुआ है।

सनातनधर्म्मकी पुष्टि, सनातनधर्म्मके अधिक रूपेण पुनः प्रचार, सनातनधर्म्ममेंसे साम्प्रदायिक विरोधका नाश और अन्य-धर्म्मोंके आक्रमणोंसे रक्षार्थ सनातनधर्म्मकी भित्ति दृढ़ करना आदि उद्देश्योंकी पूर्ति तभी हो सकती है जब सनातनधर्म्मके दार्शनिक ग्रन्थोंका विशुद्ध भाषानुवाद प्रकाशित हो और साथही साथ उपासना और योगशास्त्र सम्बन्धीय ग्रन्थ भाषानुवाद सहित प्रकाशित हों। सनातनधर्म्ममें जितने प्रकारकी साधन प्रणाली है उसको पूज्यपाद महर्षियोंने चार भागमें विभक्त किया है, यथा–मन्त्र योग, हठयोग, लययोग और राजयोग। इन योग सिद्धान्तोंके

अलग अलग संहिता ग्रन्थसमूह जब आद्योपान्त पढ़े जायगे तो साम्प्रदायिक विरोधकी सम्भावना ही नहीं रहेगी इस कारण मन्त्रयोग संहिता, हठयोग संहिता, लययोग संहिता और राजयोग संहिता, इन चार संहिता ग्रन्थोंमेंसे मन्त्रयोग संहिता पहले ही प्रकाशित हो चुकी है और हठयोग संहिता यह प्रकाशित हो रही है, शेष संहिताएँ क्रमशः प्रकाशित होंगी। इन चारों संहिता-ग्रन्थोंके द्वारा सनातनधर्म्मके सब सम्प्रदाय ही कल्याण प्राप्त नहीं होंगे किन्तु पृथिवीके सब धर्म्ममार्ग भी लाभवान् हो सकेंगे।

इस ग्रन्थरत्नका स्वत्वाधिकार श्री १०८ पूज्यपाद ग्रन्थकर्त्ताकी आज्ञानुसार श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभण्डारको अर्पित हुआ।

मार्गशीर्ष शुक्ला १५
दत्तजयन्ती
संवत् १९७८ विक्रमी

विवेकानन्द।

आत्मज्योतिषे नमः।

हठयोग संहिता

की

विषयानुक्रमणिका।

श्रीविश्वनाथो जयति ।

हठयोगसंहिता ।

मङ्गलाचरण ।

जो चित्स्वरूप ब्रह्म मन, बुद्धि और वचनसे किसी प्रकार जाने नहीं जाते हैं और जिनको योगिगण ज्योतीरूपमें दर्शन करके कृतकृत्य होते हैं, जिनकी आधिभौतिक ज्योतिसे नेत्र दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं, जिनकी आधिदैविक ज्योतिरूप सूर्यमण्डल जगत्को प्रकाशित करता है और जिनकी आध्यात्मिक ज्योतिसे जगद्भासमान होता है, ऐसे ज्योतिर्मय परमात्माको नमस्कार है ॥१॥ मार्कण्डेय, भरद्वाज, मरीचि, पराशर, विश्वामित्र, जैमिनी और भृगु आदि पूज्य-चरण महर्षियोंकी कृपासे हठयोगका प्रकाश जगत्में हुआ है ॥२-३॥ जिन पूज्यचरण आचार्योंने लौकिक क्रिया द्वारा अलौकिकशक्तिको प्राप्त

मङ्गलाचरणम् ।

नप्रज्ञावचोभिः कथमपि न हि यद्गम्यते चित्स्वरूपम् ।
द्रष्टुं क्षमेते निजविषयचयं ज्योतिरासाद्य यस्य ॥
यद्भासा सूर्यदेवः प्रतपति जगतां मङ्गलं यस्य दीप्त्या ।
विश्वं देदीप्यमानं भवति स परमः पूरुषो वन्दनीयः ॥ १ ॥
मार्कण्डेयो भरद्वाजो मरीचिरथ जैमिनिः ।
पराशरो भृगुश्चापि विश्वामित्रादयश्च ये ॥ २ ॥
एषां पूज्याङ्घ्रिपद्मानामृषीणां कृपयाऽनिशम् ।
हठयोगविकाशो वै जगत्यत्र विजृम्भते ॥ ३ ॥
लौकिकाक्रियया पूर्वाचार्यास्ते परमर्षयः ।

करनेकी शिक्षा दी है एवं जिन्होंने-स्थूलशक्तिविशिष्ट मन्दमति साधक को भी सूक्ष्मशक्ति प्राप्त करने और तत्त्वज्ञान लाभ करके कृतकृत्य होनेके सुकौशलपूर्ण अतिसुगम साधनयुक्त हठयोगके उपाय बताकर कृतकृत्य किया है उनको वारंवार नमस्कार करके हठयोग संहिता प्रारम्भ की जाती है ॥ ४ ६ ॥

—:०:—

हठयोगका लक्षण ।

प्राण, अपान, नाद, विन्दु, जीवात्मा और परमात्मा, इन सबके मेलसे जो बनता है उसीका नाम घट है अर्थात् स्थूलशरीरको घट कहते हैं ॥ १ ॥ जीवदेह अलक्षित कच्चे घड़ेकी नांई सदा जीर्णता को प्राप्त हुआ करता है, योगरूप अग्निसे उस घटको पकाकर उसकी शुद्धि करनी चाहिये ॥ २ ॥ प्रथम हठयोगके द्वारा जीर्यमाण इस स्थूलदेहको दृढ़ करते हुए पुनः सूक्ष्मशरीरको योगयुक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥ स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीरका दूसरा परिणाम है

दिव्यशक्त्त्यःतये युक्तिं निर्दिशन्ति स्म शोभनाम् ॥ ४ ॥
सुकौशलभरास्तावद्धठयोगक्रियाः शुभाः ।
प्रदर्शिताः साधकानां सूक्ष्मतत्त्वोपलब्धये ॥ ५ ॥
तत्त्वज्ञानाय च परं मुनिभिः सूक्ष्मदर्शिभिः ।
संहिता हठयोगस्य तान्नत्वारभ्यतेऽधुना ॥ ६ ॥

हठयोगलक्षणम् ।

प्राणापाननादविन्दुजीवात्मपरमात्मनाम् ।
मेलनाद्घटते यस्मात्तस्माद्वै घट उच्यते ॥ १ ॥
आमकुम्भमिवाम्भस्थं जीर्यमाणं सदा घटम् ।
योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ २ ॥
हठयोगेन प्रथमं जीर्यमाणामिमां तनुम् ।
दृढयन् सूक्ष्मदेहं वै कुर्याद्योगयुजं पुनः ॥ ३ ॥
स्थूलः सूक्ष्मस्य देहो वै परिणामान्तरं यतः ।

इस कारण जैसे ककारादि वर्णोंके अभ्यास द्वारा शास्त्रज्ञान क्रमशः लाभ होता है; उसी प्रकार स्थूलशरीरके साधनोंके द्वारा अन्तःकरणको योगयुक्त करनेको हठयोग कहते हैं ॥ ४-५ ॥ शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्षत्व और निर्लिप्तता, ये सात स्थूलशरीरके साधन कहे गये हैं, इनके अभ्याससे साधक समाधि प्राप्त करता है ॥ ६-७ ॥

—:o:—

हठयोगके अङ्ग ।

षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि, हठयोगके ये सात ही अङ्ग हैं ॥ १ ॥

हठयोगके अङ्गोंके साधनका फल ।

—:o:—

षट्कर्म द्वारा शोधन, आसन द्वारा दृढ़ता, मुद्रा द्वारा

कादिवर्णान् समभ्यस्य शास्त्रज्ञानं यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
यथोपलभ्यते तद्वत् स्थूलदेहस्य साधनैः ।
योगेन मनसो योगो हठयोगः प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥
शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम् ।
प्रत्यक्षमपि निर्लिप्तं घटस्य सप्त साधनम् ॥ ६ ॥
एषामभ्यासतो योगी समाधिमधिगच्छति ॥ ७ ॥

हठयोगाङ्गानि ।

षट्कर्मासनमुद्राः प्रत्याहारश्च प्राणसंयामः ।
ध्यानं समाधिः सप्तैवाङ्गानिस्युर्हठस्य योगस्य ॥ १ ॥

हठयोगाङ्गसाधनफलानि ।

षट्कर्मणा शोधनञ्च आसनेन भवेद्दृढम् ।

स्थिरता, प्रत्याहार द्वारा धीरता, प्राणायाम द्वारा लाघव, ध्यान द्वारा आत्माका साक्षात्कार और समाधि द्वारा निर्लिप्तता प्राप्त होकर मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ १-२ ॥

षट्कर्मों के भेद।

धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति, ये षट्कर्म कहाते हैं, इनका साधन करना चाहिये ॥ १ ॥

धौतिके भेद।

अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति, और मूलशोधन, ये चार प्रकारकी धौतियां होती हैं, इनको करके शरीरकी निर्मलता साधन करना उचित है ॥ २ ॥

अन्तर्धौतिके भेद।

वातसार, वारिसार, वह्निसार और वहिष्कृत, शरीरको निर्मल करनेके लिये ये चार प्रकारकी अन्तर्धौतियां होती हैं ॥ ३ ॥

मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता ॥ १ ॥
प्राणायामाल्लाघवञ्च ध्यानात् प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तञ्च मुक्तिरेव न संशयः ॥ २ ॥

षट्कर्मभेदाः।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिर्लौलिकी त्राटकन्तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥१॥

धौतिभेदाः।

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम्।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्तु निर्मलम् ॥२॥

अन्तर्धौतिभेदाः।

वातसारं वारिसारं वह्निसारं बहिष्कृतम्।
घटनिर्मलतार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा ॥३॥

वातसार धौति ।

होठोंको काकचञ्चुकी नांईं करके धीरे धीरे वायु पानकरे और वायुको उदरमें परिचालित करके पश्चात्मार्ग (गुदा) द्वारा उसको शनैः शनैः रेचन कर दिया जाय । यह वातसार अतीव गोपनीय है, इसके द्वारा शरीरका निर्मलतासाधन, सर्व प्रकारके रोगोंका नाश और जठराग्निकी वृद्धि हुआ करती है ॥ ४-५ ॥

वारिसार धौति ।

मुख द्वारा कण्ठपर्यन्त जलभरकर शनैः शनैः उदरमें भरे, उदरमें जल चालित करके उदरसे अधोमार्ग द्वारा नीचे रेचन कर दे, यही वारिसार कहाता है । यह वारिसार परम गोपनीय है, इसके द्वारा देहकी निर्मलता होती है, सुतरां यदि यत्नपूर्वक इसका साधन किया जाय तो देवदेह लाभ होता है, जो मनुष्य इस सर्वश्रेष्ठ वारिसार धौतिका प्रयत्नसे साधन करते हैं वे मलदेहको शुद्ध करके देवताओंकी नांईं सुन्दर देहको प्राप्त होते हैं ॥ ६-८ ॥

वातसारधौतिः ।

काकचञ्चुवदास्येन पिवेद्वायुं शनैः शनैः ।
चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः ॥ ४ ॥
वातसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारणम् ।
सर्वरोगक्षयकरं देहानलविवर्द्धकम् ॥ ५ ॥

वारिसारधौतिः ।

आकण्ठं पूरयेद्वारि वक्त्रेण च पिवेच्छनैः ।
चालयेदुदमार्गेण चोदराद्रेचयेदधः ॥ ६ ॥
वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारकम् ।
साधयेद्यः प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते ॥ ७ ॥
वारिसारं परां धौतिं साधयेद्यः प्रयत्नतः ।
मलदेहं शोधयित्वा देवदेहं प्रपद्यते ॥ ८ ॥

अग्निसार धौति।

मेरुदण्डमें नाभिग्रंथिको एक शतवार संयुक्त किया जाय तो उसीका नाम अग्निसारधौति कहाता है। यह धौति योगिगणको योगसिद्धि प्रदान करती है। इस धौति द्वारा उदरामय (उदररोग) की सब पीडाएँ नष्ट हो जाती हैं और इसके साधनसे जठराग्नि बहुत ही वृद्धिको प्राप्त होती है। यह धौति परम गोपनीया है। यह सुरगणके लिये भी दुष्प्राप्य है। इस धौति द्वारा ही मनुष्यगण देवताओंके तुल्य देहको प्राप्त कर सके हैं, इसमें सन्देह मात्र नहीं है॥ ९-१०॥

बहिष्कृत धौति।

काकीमुद्रा द्वारा वायुको उदरमें भरकर और उस वायुको अर्द्ध प्रहर तक उदरमें रखकर पश्चात् अधोमार्ग द्वारा निकाल देनेसे बहिष्कृतधौति कहाती है। यह धौति परम गोपनीया है, कभी प्रकाशित नहीं करनी चाहिये॥ ११-१२॥

अग्निसारधौतिः।

नाभिग्रन्थिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत्।
अग्निसारमियं धौतिर्योगिनां योगसिद्धिदा॥ ९॥

उदरामयकं हत्वा जठराग्निं विवर्द्धयेत्।
एषा धौतिः परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा।
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहो भवेद्ध्रुवम्॥ १०॥

बहिष्कृतधौतिः।

काकीमुद्रां साधयित्वा पूरयेन्मरुतोदरं।
धारयेदर्द्धयामन्तु चालयेद्गुदवर्त्मना॥ ११॥

एषा धौतिः परा गोप्या न प्रकाश्या कदाचन॥ १२॥

बहिष्कृत धौतिका अङ्ग प्रक्षालन।

नाभिमग्न जलमें खड़े होकर शक्ति नाड़ीको बाहर निकाल कर जब तक उसका मल पूर्णरूपेण धुल न जाय तब तक उसको करद्वारा प्रक्षालन किया जाय, पश्चात् शुद्धकी हुई नाड़ी पुनः उदरमें भरली जाय। यह प्रक्षालन देवतागणके लिये भी दुर्लभ है, यह गोपनीय है और केवल इस धौति द्वारा ही देवताके सदृश देहकी प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं। जबतक साधक एक यामार्द्ध समय तक वायुको रोक नहीं सके तबतक इस बहिष्कृत महाधौतिका साधन नहीं होता है ॥ १३-१५ ॥

दन्तधौतिके भेद।

दन्तमूलधौति, जिह्वामूलधौति, कर्णरन्ध्रद्वयधौति और कपालरन्ध्रधौति, ये पांच दन्तधौतिके भेद हैं ॥ १६ ॥

दन्तमूल धौति।

खादिररस द्वारा अथवा विशुद्ध मृत्तिका द्वारा जबतक

बहिष्कृताङ्गभूतप्रक्षालनम्।

नाभिमग्नजले स्थित्वा शक्तिनाडीं विसर्जयेत्।
कराभ्यां क्षालयेन्नाडीं यावन्मलविसर्जनम् ॥ १३ ॥
तावत्प्रक्षाल्य नाडीञ्च उदरे वेशयेत् पुनः।
इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहो भवेद्ध्रुवम् ॥ १४ ॥
यामार्द्धं धारणाशक्तिं यावन्न साधयेन्नरः।
बहिष्कृतं महद्धौतिस्तावच्चैव न जायते ॥१५॥

दन्तधौतिभेदाः।

दन्तस्य चैव जिह्वाया मूलं रन्ध्रं च कर्णयोः।
कपालरन्ध्रं पञ्चैते दन्तधौतिर्विधीयते ॥ १६ ॥

दन्तमूलधौतिः।

खादिरेण रसेनाथ शुद्धया च मृदा तथा।

मल दूर न हो जाय तबतक दन्तमूल मार्जन करना उचित है ॥१७॥ योगिगणके योगसाधनमें दन्तमूलधौति प्रधान कहाती है। योगवित् साधक प्रतिदिन प्रभातमें दन्तरक्षाके अर्थ यह धौति करे। दन्तमूल धौति आदि कार्य्योंके करनेपर योगियोंको बल प्राप्त होता है ॥१८॥

जिह्वामूल धौति ।

अथ जिह्वाशोधनका कारण वर्णन किया जाता है। जिह्वाशोधन द्वारा जिह्वाकी दीर्घता साधन और जरा, मरण एवं नाना रोगादिकी शान्ति हुआ करती है ॥ १९ ॥ तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिका, इन तीनों अङ्गुलियोंको एकत्र करके गलेके भीतर प्रवेशकर जिह्वाके मल-को मार्जन किया जाय ॥२०॥ शनैः शनैः इस प्रकारसे मार्जन करनेसे कफदोषका नाश हो जाता है। पुनः पुनः नवनीत द्वारा जिह्वा मार्जन और दोहन करे ॥ २१ ॥ और लोहयन्त्र द्वारा जिह्वाके अग्रभागको शनैः शनैः आकर्षण करे। प्रतिदिन प्रातः काल और सूर्य अस्तके

मार्जयेद्दन्तमूलञ्च यावत्किल्विषमाहरेत् ॥ १७ ॥
दन्तमूलं परा धौतिर्योगिनां योगसाधने ।
नित्यं कुर्यात् प्रभाते च दन्तरक्षाञ्च योगवित् ।
दन्तमूलधावनादिकार्येषु योगिनां बलम् ॥ १८ ॥

जिह्वामूलधौतिः ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधनकारणम् ।
जरामरणरोगादीन्नाशयेद्दीर्घलम्बिका ॥ १९ ॥
तर्ज्जनी मध्यमाऽनामा इत्यङ्गुलित्रयं नरः ।
वेशयेद्गलमध्ये तु मार्ज्जयेल्लम्बिकामलम् ॥ २० ॥
शनैः शनैर्मार्ज्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ।
मार्ज्जयेन्नवनीतेन दोहयेच्च पुनः पुनः ॥ २१ ॥
तदग्रं लौहयन्त्रेण कर्षयित्वा शनैः शनैः ।
नित्यं कुर्यात्प्रयत्नेन रवेरुदयकेऽस्तके ॥

समय यत्नपूर्वक इस धौतिका अभ्यास करना उचित है, नित्य ऐसा करनेसे जिह्वा दीर्घताको प्राप्त हो जाती है ॥ २२ ॥

कर्णरन्ध्र धौति ।

तर्जनी और अनामिका इन दोनों अङ्गुलियों द्वारा कर्णरन्ध्रयुगल मार्जन करे । प्रतिदिन ऐसा करनेसे एक नादका प्रकाश होता है ॥ २३ ॥

कपालरन्ध्र धौति ।

दक्षिण हस्तकी वृद्ध अङ्गुलि (अंगूठे) के द्वारा कपालरन्ध्र मार्जन करे । इसका प्रतिदिन भोजनके अन्तमें, निद्राके अन्तमें और दिनके अन्तमें साधन करे ॥ २४ ॥ इस अभ्याससे कफदोषोंका नाश होता है, इस कपालरन्ध्रधौतिके साधनसे नाडियों की निर्मलता और दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति होती है । २५ ॥

हृद्धौतिके भेद ।

हृद्धौति तीन प्रकार की होती है; यथा—दण्डधौति, वमन धौति और वासोधौति ॥ २६ ॥

एवं कृते च नित्यं सा लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ॥ २२ ॥

कर्णरन्ध्रयोर्धौतिः ।

तर्जन्यनामिकायोगान्मार्जयेत्कर्णरन्ध्रयोः ।
नित्यमभ्यासयोगेन नादो याति प्रकाशताम् ॥ २३ ॥

कपालरन्ध्रधौतिः ।

वृद्धाङ्गुष्ठेन दक्षेण मार्जयेद्भालरन्ध्रकम् ।
निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने ॥ २४ ॥
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ।
नाडी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ २५ ॥

हृद्धौतिभेदाः ।

हृद्धौतिं त्रिविधां कुर्याद्दण्डवमनवाससा ॥ २६ ॥

दण्ड धौति ।

रम्भादण्ड हरिद्रादण्ड अथवा वेत्रदण्ड हृदयके बीच वार वार प्रवेश करके धीरे धीरे निकालनेसे दण्डधौतिका साधन होता है ॥ २७ ॥ इस दण्डधौतिके साधनसे ऊर्द्ध्व मार्ग द्वारा कफ, पित्त और क्लेद आदि निकाले जातेहैं और इससे हृद्रोगकी शान्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २८ ॥

वमन धौति ।

भोजनके अन्तमें धीमान् साधक कण्ठपर्यन्त वारि पान करके तत्पश्चात् कुछ कालतक ऊर्द्ध्व नयन रह कर वमन द्वारा उस जलको निकाल डाले, यह वमनधौति कहाती है । प्रतिदिन इस धौतिके अभ्याससे कफ और पित्तका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥

वासो धौति ।

चार अंगुल चौडा सूक्ष्म वस्त्र धीरे धीरे ग्रास करके तत्पश्चात् शनैः शनैः वस्त्रको वाहिर निकालनेसे वासोधौति कहाती है ॥३०॥

दण्डधौतिः ।

रम्भाहरिद्रयोर्दण्डं वेत्रदण्डं तथैव च ।
हृन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः ॥ २७ ॥
कफपित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्द्ध्ववर्त्मना ।
दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ २८ ॥

वमनधौतिः ।

भोजनान्ते पिबेद्वारि चाकण्ठपूरितं सुधीः ।
ऊर्द्ध्वां दृष्टिं क्षणं कृत्वा तज्जलं वामयेत्पुनः ॥
नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत् ॥ २९ ॥

वासोधौतिः ।

चतुरङ्गुलविस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ।
पुनः प्रत्याहरेदेतत्प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥ ३० ॥

इस वासोधौतिके अभ्याससे गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ट, कफ, और पित्त रोगोंकी शान्ति होती है और दिन प्रतिदिन आरोग्य, बल और पुष्टिकी प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥

मूलशोधन धौति ।

जब तक मूलशोधन नहीं किया जाता है तब तक अपान वायुकी क्रूरता विद्यमान रहती है इस कारण यत्नपूर्वक मूल-शोधन करना उचित है ॥ ३२ ॥ हरिद्रा मूलके दण्डसे अथ-वा मध्यम अङ्गुलि द्वारा और जलसे पुनः पुनः यत्नपूर्वक गुह्य स्थानको प्रक्षालन करना उचित है ॥ ३३ ॥ मूलशोधन द्वारा कोष्ठकी बद्धता, आम और अजीर्णता नाशको प्राप्त होती है, देहमें कान्ति और पुष्टिकी वृद्धि हो जाती है और जठराग्नि वृद्धिको प्राप्त होती है ॥३४॥

वस्तिके भेद ।

वस्तिके दो भेद हैं, यथा-जलवस्ति और शुष्कवस्ति । जलवस्ति जलमें और शुष्कवस्ति स्थलमें सदा साधनकी जाती है ॥ ३५ ॥

गुल्मज्वरः कफः पित्तं प्लीहा कुष्ठं च नश्यति ।
आरोग्यं बलपुष्टी च स्यातां तस्य दिने दिने ॥ ३१ ॥

मूलशोधनधौतिः ।

अपानक्रूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत् ॥ ३२ ॥
पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाङ्गुलिनापि वा ।
यत्नेन क्षालयेद्गुह्यं वारिणा च पुनः पुनः ॥ ३३ ॥
वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्णं निवारयेत् ।
कारणं कान्तिपुष्ट्योश्च वन्हिमण्डलदीपनम् ॥ ३४ ॥

वस्तिभेदाः ।

जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्तिर्वै द्विविधा स्मृता ।
जलवस्तिं जले कुर्याच्छुष्कवस्तिं सदा क्षितौ ॥ ३५ ॥

जल वस्ति।

नाभिमग्न जलमें अवस्थित रहकर उत्कटासन द्वारा गुह्यदेशका आकुंचन और प्रसारण करके जलवस्तिको करे॥ ३६॥ जलवस्तिसाधन द्वारा प्रमेह, उदावर्त और क्रूरवायु विनाशको प्राप्त हो जाता है और साधक निरोगी और कामदेवके समान होता है॥ ३७॥

शुष्क वस्ति।

पश्चिमोत्तान आसन द्वारा शनैः शनैः वस्तिको नीचेकी ओर चालन करके अश्विनीमुद्रा द्वारा गुह्यस्थानको आकुंचन और प्रसारण करे॥ ३८॥ इस वस्तिके अभ्याससे कोष्ठ दोष और आमवातकी शान्ति होती है और जठर-अग्निकी वृद्धि होती है॥ ३९॥

नेति प्रकरण।

आध हाथके परिमाणका सूक्ष्म सूत्र नासिकाके बीचमें प्रवेश करके, पश्चात् उसको मुख द्वारा निर्गत करनेसे नेतिकर्म कहाता है॥ ४०॥

जलवस्तिः।

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम्।
आकुञ्चनं प्रसारञ्च जलवस्तिं समाचरेत्॥ ३६॥
प्रमेहं च उदावर्तं क्रूरवायुं निवारयेत्।
भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत्॥ ३७॥

शुष्कवस्तिः।

पश्चिमोत्तानतो वस्तिं चालयित्वा शनैरधः।
अश्विनीमुद्रया पायुं कुञ्चयेच्च प्रसारयेत्॥ ३८॥
एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषो न विद्यते।
विवर्द्धयेज्जाठराऽग्निमामवातं विनाशयेत्॥ ३९॥

नेतिप्रकरणम्।

वितस्तिमात्रं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्प्रोच्यते नेतिकर्म तत्॥ ४०॥

नेतिकर्मके साधनसे खेचरीमुद्राकी सिद्धि होती है, कफदोषका नाश होता है और दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥

लौलिकी प्रकरण।

प्रबल वेगसे जठरको दोनों ओर भ्रामित करनेसे लौलिकी क्रियाका साधन होता है, इस क्रिया द्वारा सब प्रकारके रोगोंकी शान्ति और देहानलकी वृद्धि हुआ करती है। यही क्रिया और नाना क्रियाओंमें सहायकारी होती है ॥ ४२ ॥

त्राटक प्रकरण।

जब तक नेत्रद्वयसे अश्रुपात न हो तबतक अनिमेषपूर्वक किसी सूक्ष्मपदार्थकी ओर दृष्टिपात किये रहनेका नाम विद्वान् लोग त्राटक योग कहते हैं ॥४३॥ त्राटक योगके अभ्यास करनेसे शाम्भवी मुद्रा अवश्य होती है और इसके साधनसे नेत्ररोगोंकी शान्ति और दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति हुआ करती है ॥ ४४ ॥

साधनान्नेतिकार्यस्य खेचरी सिद्धिमाप्नुयात्।
कफदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ४१ ॥

लौलिकीप्रकरणम्।

अमन्दवेगकैस्तुन्दं भ्रामयेदुभपार्श्वयोः।
सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्धनम् ॥ ४२ ॥

त्राटकप्रकरणम्।

निमेषोन्मेषकौ त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
यावदश्रूणि मुञ्चन्ति त्राटकं प्रोच्यते बुधैः ॥ ४३ ॥
एवमभ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम्।
नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ४४ ॥

कपालभाति भेद ।

कपालभाति तीन प्रकारकी होती है, यथा—वातक्रमकपाल-भाति, व्युत्क्रमकपालभाति और शीत्क्रमकपालभाति । कपालभाति साधनसे कफदोषकी शान्ति हुआ करती है ॥ ४५ ॥

वातक्रम कपालभाति प्रयोग ।

इडा अर्थात् वाम नासाद्वारा वायुका पूरक करके पिङ्गला अर्थात् दक्षिण नासाद्वारा उसका रेचन किया जाय और पुनः दक्षिण नासाद्वारा वायुका पूरक करके वाम नासा द्वारा उसका रेचन करनेसे वातक्रम कपालभाति क्रिया हुआ करती है ॥४६॥ पूरक और रेचक करते समय वेग प्रयोग नहीं करना चाहिये अर्थात् शनैः शनैः वायु ग्रहण और त्याग करना उचित है। इस क्रियाके अभ्याससे कफ दोषकी शान्ति होती है ॥ ४७ ॥

व्युत्क्रमकपालभाति प्रयोग ।

नासाद्वय द्वारा वारिग्रहण करके मुख द्वारा निर्गत किया जाय और पुनः मुख द्वारा वारि ग्रहण करके नासिका द्वारा वहिर्गत करने से तथा पुनः पुनः ऐसा करते रहनेसे व्युत्क्रम कपालभाति क्रियाका साधन होता है । इसके द्वारा कफ दोष दूर हो जाता है ॥ ४८ ॥

कपालभातिभेदाः ।

वातक्रमव्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः ।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत् ॥ ४५ ॥

वातक्रमकपालभातिः ।

इडया पूरयेद्वायुं रेचयेत्पिङ्गलाख्यया ।
पिङ्गलया पूरयित्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥ ४६ ॥
पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥ ४७ ॥

व्युत्क्रमकपालभातिः ।

नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत् ।
पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत् ॥ ४८ ॥

शीत्क्रम कपालभाति प्रयोग ।

मुख द्वारा शीत्कार पूर्वक वायु ग्रहण करके नासिका द्वारा निकाल देनेसे शीत्क्रम कपालभातिका साधन होता है। इस क्रियाके साधनसे शरीर कामदेवके तुल्य होता है, ॥ ४९ ॥ वार्द्धक्य और ज्वरका उदय कभी नहीं होता और कफ दोषसे बचकर शरीर नीरोग बना रहता है ॥ ५० ॥

आसन प्रकरण ।

आसनके लक्षण और संख्या ।

जिस तरह बैठनेके अभ्याससे यह शरीर योगोपयोगी होता है और मन स्थिर होना है उसको आसन कहते हैं ॥१ ॥ जितनी योनिके प्राणी हैं आसनोंकी संख्या भी उतनी ही जानना उचित है, देवादिदेव महादेवने चौरासी लक्ष आसनोंका वर्णन किया था ॥ २ ॥

शीत्क्रमकपालभातिः ।

शीत्कृत्य पीत्वा वक्त्रेण नासानालैर्विरेचयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमो भवेत् ॥ ४९ ॥
भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कफदोषं निवारयेत् ।
न जायते च वार्द्धक्यं ज्वरो नैव प्रजायते ॥ ५० ॥

अथाऽऽसनप्रकरणम् ।

आसनलक्षणं संख्या च ।

अभ्यासाद्यस्य देहोऽयं योगौपयिकतां व्रजेत् ।
मनश्च स्थिरतामेति प्रोच्यते तदिहाऽऽसनम् ॥ १ ॥
आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवयोनयः ।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितानि तु ॥ २ ॥

उनमेंसे चौरासी आसन सबसे श्रेष्ठ हैं; और उन चौरासियोंमेंसे मानवलोकमें तेंतीस आसन कल्याणको देनेवाले हैं ॥३॥

आसनके स्थान और देशका वर्णन।

जहां सुराज्य हो, जो देश धार्मिक हो, जहां सुभिक्ष रहे, जिस देशमें किसी प्रकारका उपद्रव न रहे वहां शिला अग्नि और जलसे धनुः प्रमाण परिमित दूर पर रहकर एकान्त स्थानमें छोटीसी मठिका बनाकर योगीको योग साधन करना उचित है। योग साधन गृहमें छोटा द्वार होना उचित है, वह घर छेद और बिल आदिसे रहित हो, वह न तो बहुत ऊंचा हो और न बहुत नीचा, गोमयसे लिपा हुआ हो, और सब प्रकारके कीटोंसे रहित हो तबही वह साधन उपयोगी होगा। उस मठके बाहर एक मण्डप, एक वेदी और एक कूप रहना उचित है। ऐसा वृक्ष आदिसे रमणीय स्थान प्राकार द्वारा वेष्टित होनेसे वह योगाभ्यासके उपयोगी होता है और योगियोंको सिद्धि दान कर सका है ॥ ४-६ ॥

तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम्।
आसनानि त्रयस्त्रिंशन्मर्त्यलोके शुभानि वै ॥ ३ ॥

आसन स्थानदेशवर्णनम्।

सुराज्ये धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे।
धनुःप्रमाणपर्यन्तं शिलाऽग्निजलवर्जिते ॥ ४ ॥
एकान्ते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठयोगिना ॥ ५ ॥
अल्पद्वारमरन्ध्रगर्त्तविवरं नात्युच्चनीचायतं
सम्यग्गोमयसान्द्रलिप्तममलं निःशेषजन्तूज्झितम्।
बाह्ये मण्डपवेदिकूपरुचिरं प्राकारसंवेष्टितं
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः ॥ ६ ॥

इस प्रकारसे मठमें स्थित रह कर सब प्रकारकी चिन्ताओंको त्याग करके गुरु उपदिष्ट साधन अनुसार अभ्यास करना मुमुक्षुको उचित है ॥ ७ ॥

आसनभेद ।

सिद्धासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानआसन, उत्कटासन, संकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, मण्डूकासन, गरुडासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजङ्गासन और योगासन, ये तेंतीस मर्त्यलोकमें सिद्धि देनेवाले हैं ॥ ८ ॥ ११ ॥

सिद्धासन ।

जितेन्द्रिय साधक जब वामगुल्फ द्वारा गुदाको दबाकर और

एवंविधे मठे स्थित्वा सर्वचिन्ताविवर्जितः ।
गुरूपदिष्टमार्गेण योगमेवं समभ्यसेत् ॥ ७ ॥

आसनभेदाः ।

सिद्धं च स्वस्तिकं पद्मं बद्धपद्मं च भद्रकम् ।
मुक्तं वज्रं च सिंहं च गोमुखं वीरमेव च ॥ ८ ॥
धनुर्मृतं तथा गुप्तं मात्स्यं मत्स्येन्द्रमेव च ।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानमुत्कटं संकटं तथा ॥ ९ ॥
मायूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम् ।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं माण्डूकं गरुडं वृषम् ॥ १० ॥
शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजंगं योगमासनम् ।
आसनानि त्रयस्त्रिंशत्सिद्धिदानीति निश्चितम् ॥ ११ ॥

सिद्धासनम् ।

वशीकृतेन्द्रियग्रामो वामगुल्फेन गुह्यकम् ।

दक्षिण गुल्फ द्वारा लिङ्ग मूल दबाकर मेरुदण्डको सीधा करता हुआ सुखसे बैठता है उसको सिद्धासन कहते हैं, यह योग सिद्धिकर है ॥ १२-१३ ॥

स्वस्तिकासन ।

जानु द्वय और ऊरु युगलके बीचमें चरण तल द्वय रखकर त्रिकोणाकार आसन बद्ध होकर सीधी रीतिपर बैठनेका नाम स्वस्तिकासन कहाता है ॥ १४ ॥

पद्मासन ।

क्लेश रहित होकर बैठते हुए दक्षिण पैर वाम ऊरुके ऊपर और वाम पैर दक्षिण ऊरुके ऊपर रख कर जो सुगम आसन होता है उसको पद्मासन कहते हैं ॥ १५ ॥

बद्धपद्मासन ।

दक्षिण पाद वाम उरुके ऊपर और वाम पाद दक्षिण ऊरुके ऊपर स्थापन करके करद्वय द्वारा पीठसे घूमाकर चरणोंकी वृद्ध

दक्षिणेन च लिङ्गस्य मूलमापीड्येत्ततः ॥ १२ ॥
मेरुदण्डमृजूकुर्वन्नास्यते यत्सुखासनम् ।
सिद्धासनमिति प्रोक्तं योगसिद्धिकरं परम् ॥ १३ ॥

स्वस्तिकासनम् ।

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक्पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

पद्मासनम् ।

दक्षिणं चरणं वामे दक्षिणोरौ च सव्यकम् ।
अक्लेशमासनं यद्धि पद्मासनमितीरितम् ॥ १५ ॥

बद्धपद्मासनम् ।

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् ।

अङ्गुली धारण करके चिबुक वक्षस्थलपर स्थापन करके नासाग्रभाग दर्शन करनेसे वद्ध पद्मासन हुआ करता है, इस आसन द्वारा नाना प्रकारकी व्याधियोंका नाश होता है ॥१६॥

भद्रासन।

दोनों गुल्फ वृषणके नीचे विपरीतभावसे स्थापन करके पृष्ठसे करद्वय चलाकर दोनों चरणोंकी वृद्धाङ्गुली धारणपूर्वक जालन्धर बन्ध करते हुए नासिकाके अग्रभागका दर्शन करनेसे भद्रासन हुआ करता है। इस आसनके अभ्याससे सब प्रकारकी व्याधिओंकी शान्ति हुआ करती है॥ १७-१८ ॥

मुक्तासन।

वामगुल्फ पायुमूलमें रखकर उसके ऊपर दक्षिणगुल्फ स्थापित करके मस्तक और ग्रीवा सीधमें रखते हुए शरीरको समभावमें रखनेसे मुक्तासन हुआ करता है, यह आसन साधकगणको सिद्धिका देनेवाला है॥ १६ ॥

अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकये-
देतद्व्याधिविनाशनं सुखकरं वद्धासनं प्रोच्यते ॥ १६ ॥

भद्रासनम्।

गुल्फौ च वृषणस्याऽधो व्युत्क्रमेण समाहितः।
पादाङ्गुष्ठौ कराभ्यां च धृत्वा च पृष्ठदेशतः॥ १७ ॥
जालन्धरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयेत्।
भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम्॥ १८ ॥

मुक्तासनम्।

पायुमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि।
समकायशिरोग्रीवं मुक्तासनन्तु सिद्धिदम्॥ १९ ॥

वज्रासन।

दोनों जंघाओंको वज्राकृति करके गुदाके उभय पार्श्वमें दोनों पैरोंको स्थापन करनेसे वज्रासन हुआ करता है। यह आसन योगियोंको सिद्धि प्रदान करनेवाला है ॥ २० ॥

सिंहासन।

गुल्फद्वय वृषणके नीचे उलटी रीतिसे रखकर ऊपरकी ओर निकलते हुए दोनों जानुओंको पृथिवी पर रखकर और जानुओं के ऊपर मुख व्यक्तरीतिपर रखके जालन्धर वन्ध करते हुए नासिका के अग्रभागको देखनेसे सिंहासन हुआ करता है। इस आसनके साधनसे सब प्रकारकी व्याधियोंकी शान्ति हुआ करती है ॥२१-२२॥

गोमुखासन।

पृथिवीके ऊपर दोनों चरणोंको स्थापन करके पीठके दोनों ओर निकालते हुए गोमुखकी नाई आसन करके समान होकर बैठनेसे गोमुखासन कहाता है ॥ २३ ॥

वज्रासनम्।

जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदपार्श्वे पदावुभौ।
वज्रासनं भवेदेतद्योगिनां सिद्धिदायकम् ॥ २० ॥

सिंहासनम्।

गुल्फौ च वृषणस्याऽधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतौ।
चितिमूलौ भूमिसंस्थौ कृत्वा च जानुनोपरि ॥ २१ ॥
व्यक्तवक्त्रो जलन्ध्रश्च नासाग्रमवलोकयेत्।
सिंहासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ २२ ॥

गोमुखासनम्।

पादौ च भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत्।
स्थिरकायं समासाद्य गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥ २३ ॥

वीरासन ।

एक ऊरुके पास एक पाद रखकर दूसरे पादको पीछेकी ओर रखनेसे वीरासन कहलाता है ॥ २४ ॥

धनुरासन ।

दोनों चरणोंको पृथिवीपर दण्डवत् सीधा रखकर पीठकी ओर से दोनों हाथ चलाकर चरण युगलको धारण करके देहको धनुष आकार करनेसे उसे योगीगण धनुरासन कहते हैं ॥२५॥

मृतासन वा शवासन ।

मृत मनुष्यकी नाईं पृथिवीपर शयन करनेसे मृतासन कहाता है, इसीका नाम शवासन है। यह आसन श्रमको दूर करनेवाला और चित्त विश्रामका हेतु कहाता है ॥ २६ ॥

गुप्तासन ।

जानुद्वयके मध्यस्थलमें चरण युगलको गुप्त भावसे स्थापन करके उन चरणोंपर गुह्यदेश रखनेसे गुप्तासन कहाता है ॥ २७ ॥

वीरासनम् ।

एकपादमथैकस्मिन्विन्यसेदूरुसंस्थितौ ।
इतरं तु तथा पश्चाद्वीरासनमितीरितम् ॥ २४ ॥

धनुरासनम् ।

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मौ ।
कृत्वा धनुस्तुल्यविवर्त्तिताङ्गं निगद्यते वै धनुरासनं तत् ॥२५॥

मृतासनम् ।

उत्तानं शववद्भूमौ शयानं तु शवासनम् ।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥ २६ ॥

गुप्तासनम् ।

जान्वोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत् ।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदं गुप्तासनं विदुः ॥ २७ ॥

मत्स्यासन ।

मुक्त पद्मासन करके कोनियों (कुहुनियों) को शिरपर लगा कर शयन करनेसे मत्स्यासन हुआ करती है । इस आसनद्वारा नाना प्रकारके रोगोंकी शान्ति हुआ करती है ॥ २८ ॥

मत्स्येंद्रासन ।

जठर देश पीठकी नाईं ऋजुभावसे स्थापन करके यत्न पूर्वक स्थिर रहकर वामपादको नम्र करके दक्षिण जानुके ऊपर रखकर और उस पर दक्षिण कोहनिकोंको रखकर दक्षिण हाथपर वदन रक्खे हुए भ्रूयुगलके वीचमें दर्शन करनेसे मत्स्येन्द्रासन हुआ करता है ॥ २९-३० ॥

गोरक्षासन ।

जानुद्वय और ऊरुके वीचमें पद युगलको व्यक्तभावसे उत्तान-रूपसे स्थापन करके उत्तान करद्वय द्वारा गुल्फ युगलको समावृत किया जाय ॥ ३१ ॥

मत्स्यासनम् ।

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ।
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासनमरोगकृत् ॥ २८ ॥

मत्स्येन्द्रासनम् ।

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वा तिष्ठति यत्नतः ।
नम्राङ्गं वामपादं च दक्षजानूपरि न्यसेत् ॥ २९ ॥
तत्र याम्यं कूर्परं च करे याम्ये च वक्त्रकम् ।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिः पीठं मात्स्येन्द्रमुच्यते ॥ ३० ॥

गोरक्षासनम् ।

जानूर्वोरन्तरे पादावुत्तानौ व्यक्तसंस्थितौ ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर कण्ठसंकोचन पूर्वक नासिकाके अग्रभाग दर्शन करनेसे गोरक्षासन हुआ करता है, यह आसन योगियोंको सिद्धि देनेवाला है ॥३२॥

पश्चिमोत्तान वा उग्रासन ।

पदयुगलको पृथिवी पर दण्डवत् सीधे रखकर करद्वय द्वारा यत्न पूर्वक चरणद्वयको धारण करके जंघाओंके बीचमें शिर रखने से पश्चिमोत्तान आसन कहाता है। इस आसन में वायुका उद्दीपन होता है इस कारण इसको उग्रासन भी कहते हैं ॥ ३३ ॥

उत्कटासन ।

पदाङ्गुष्ठद्वयद्वारा मृत्तिकास्पर्श पूर्वक गुल्फद्वयको निरालम्बभावसे रखकर उनपर गुह्यदेशको स्थापन करनेसे उत्कटासन कहलाता है ॥३४॥

सङ्कटासन ।

वामचरण और वामजानु पृथिवी पर स्थापन करके दक्षिण-पाद द्वारा वामपाद वेष्टित करके जानुद्वयके ऊपर करद्वय स्थापन करनेसे संकटासन होता है ॥ ३५ ॥

कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत् ।
गोरक्षासनमित्याहुर्योगिनां सिद्धिकारणम् ॥ ३२ ॥

पश्चिमोत्तानमुग्रासनं वा ।

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ
संन्यस्य भालं चितियुग्ममध्ये ।
यत्नेन पादौ विधृतौ कराभ्या-
मुत्तानपश्चासनमेतदाहुः ॥ ३३ ॥

उत्कटासनम् ।

अङ्गुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फौ च खे गतौ ।
तत्रोपरि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम् ॥ ३४ ॥

सङ्कटासनम् ।

वामपादं चितेर्मूलं संन्यस्य धरणीतले ।
पाददण्डेन याम्येन वेष्टयेद्वामपादकम् ।
जानुयुग्मे हस्तयुग्ममेतत्सङ्कटमासनम् ॥ ३५ ॥

मयूरासन ।

हथेलीसे पृथिवीका आश्रय करके कोणी द्वयके ऊपर नाभिका उभय पार्श्व स्थापनपूर्वक चरणद्वय पीछेकी ओर उठाकर दण्डवत होकर शून्यमें अवस्थित रहनेसे मयूर आसन हुआ करता है। इस मयूर आसनके अभ्याससे अधिक भोजन भी पचन होजाता है, जठराग्निकी वृद्धि होती है, विषदोषका नाश हो सक्ता है और गुल्म ज्वर आदि नाना रोगोंकी शान्ति होती है ॥ ३६-३७॥

कुक्कुटासन ।

मुक्त पद्मासन होकर जानुद्वय और ऊरुद्वयके मध्यमें करद्वयको पृथिवीपर स्थापन करके मंचस्थ हो स्थिर रहनेसे कुक्कुटासन हुआ करता है ॥ ३८॥

कूर्मासन ।

वृषणके नीचे गुल्फद्वय विपरीत भावसे स्थापन करके मस्तक

मयूरासनम् ।

धरामवष्टभ्य करद्वयेन
तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वम् ।
उच्चासने दण्डवदुत्थितः खे
मायूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम् ॥ ३६ ॥
बहुकदशनभुक्तं भस्मकुर्यादशेषं
जनयति जठराग्निं जारयेत्कालकूटम् ।
[illegible]ति सकलरोगानाशुगुल्मज्वरादीन्
[illegible] भवति विगतदोषमासनं श्रीमयूरम् ॥ ३७ ॥

कुक्कुटासनम् ।

[illegible] आनूर्वोरन्तरे करौ ।
[illegible] आसीन उच्चस्थः कुक्कुटासनम् ॥३८॥

कूर्मासनम् ।

[illegible] व्युत्क्रमेण समाहितौ ।

ग्रीवा और देहको ऋजुभावसे स्थित करके अवस्थित रहनेसे कूर्म्मासन हुआ करता है ॥ ३९ ॥

उत्तानकूर्मासन ।

कुक्कुटासनबन्धपूर्वक करद्वय द्वारा कन्धर धारण करके कूर्मवत् उत्तान होकर सोनेसे उत्तानकूर्मासन हुआ करता है ॥ ४० ॥

मण्डूकासन ।

पृष्ठदेशपर चरणतलद्वय लेजाकर पादयुगलको वृद्ध अङ्गुलियोंको परस्पर संलग्न करके जानुद्वयको सामने रखनेसे मण्डूकासन हुआ करता है ॥ ४१ ॥

उत्तानमण्डूकासन ।

मण्डूक आसनपर समासीन होकर कोनीद्वय द्वारा मस्तकको धारण करके मण्डूक भावसे उत्तान सोनेका नाम उत्तानमण्डूक आसन है ॥ ४२ ॥

ऋजुकायशिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितम् ॥ ३९ ॥

उत्तानकूर्मासनम् ।

कुक्कुटासनबन्धस्थं कराभ्यां धृतकन्धरम् ।
शेते कूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम् ॥ ४० ॥

मण्डूकासनम् ।

पृष्ठे पादयुगं त्वस्याऽङ्गुष्ठे द्वे तस्य संस्पृशेत् ।
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य मण्डूकासनमाचरेत् ॥ ४१ ॥

उत्तानमण्डूकासनम् ।

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां धृतं शिरः ।
शेते भेकवदुत्तानमेतदुत्तानमण्डूकम् ॥ ४२ ॥

वृक्षासन।

दक्षिणचरण वाम उरुके मूलदेशमें स्थापन करके वृक्षवत् समानताके साथ पृथिवीपर अवस्थित रहनेसे वृक्षासन हुआ करता है ॥४३॥

गरुडासन।

उरुद्वय और जङ्घाद्वय द्वारा भूतल आक्रमण पूर्वक जानुद्वय द्वारा देहको स्थिरभावसे रखकर जानुयुगलके ऊपर करद्वय स्थापन करनेसे गरुडासन होता है ॥ ४४ ॥

वृषासन।

गुह्य देशपर दक्षिण गुल्फका उपरिभाग स्थापन करके उसीकी वामदिक् पर वामचरण विपरीत भावसे धारण पूर्वक पृथिवी स्पर्श करनेसे वृषासन हुआ करता है ॥ ४५ ॥

शलभासन।

अधोमुख होकर शयन करके वक्षस्थलपर करद्वय स्थापन

वृक्षासनम्।

वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय तु।
तिष्ठत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः ॥ ४३ ॥

गरुडासनम्।

जङ्घोरुभ्यां धरां धृत्वा स्थिरकायो द्विजानुना।
जानूपरि करद्वन्द्वं गरुडासनमुच्यते ॥ ४४ ॥

वृषासनम्।

याम्यगुल्फे पायुमूलं वामभागे पदेतरम्।
विपरीतं स्पृशेद्भूमिं वृषासनमिदं भवेत् ॥ ४५ ॥

शलभासनम्।

अध्यास्य शेते करयुग्मवक्षे
भूमिमवष्टभ्य करद्वयेन।

पूर्वक करतलद्वय द्वारा पृथिवी स्पर्श करके शून्यमें वितस्ति प्रमाण ऊपर पादद्वय रखनेसे शलभासन हुआ करता है ॥ ४६ ॥

मकरासन।

अधोमुख होकर शयन करके पृथिवीपर वक्षस्थल स्थापन करके पादद्वय विस्तार करते हुए करयुगल द्वारा मस्तकको धारण करनेसे मकरासन हुआ करता है, इस आसनके अभ्याससे शरीरस्थ तेजकी वृद्धि हुआ करती है ॥ ४७ ॥

उष्ट्रासन।

अधोमुख होकर शयन करते हुए चरण युगलको उलटकर पीठकी ओर रखकर करद्वय द्वारा चरणोंको धारण करके जठरको दृढ़रूपसे सङ्कोचित करनेसे उष्ट्रासन हुआ करता है ॥ ४८ ॥

पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्द्ध्वं
वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्राः ॥ ४६ ॥

मकरासनम्।

अधस्तु शेते हृदयं निधाय
भूमौ च पादौ च प्रसार्यमाणौ।
शिरश्च धृत्वा करदण्डयुग्मे
देहाग्निकारं मकरासनं स्यात् ॥ ४७ ॥

उष्ट्रासनम्।

अधस्तु शेते पदयुग्मव्यस्तं
पृष्ठे निधायाऽपि धृतं कराभ्याम्।
आकुञ्चयेज्जाठरचर्मगाढ-
मौष्ट्रं च पीठं मुनयो वदन्ति ॥ ४८ ॥

भुजङ्गासन ।

नाभिसे लेकर पादके वृद्धाङ्गुष्ठ पर्यन्त निम्नभाग पृथिवीपर स्थापन करते हुए करतल द्वारा पृथिवी अवलम्बन पूर्वक भुजङ्गकी नाईं शिरोदेश ऊपरको उठानेसे भुजङ्गासन हुआ करता है, इस आसन द्वारा शरीरस्थ अनलकी दिन दिन वृद्धि और नाना रोगोंकी शान्ति हुआ करती है और कुण्डलिनी शक्ति भी जागृत होती है ॥ ४९-५० ॥

योगासन ।

चरणद्वय उत्तान (चित्ता) करके जानुयुगलके ऊपर स्थापन करते हुए करद्वयको उत्तान भावसे आसनपर रखकर पूरक द्वारा अनिल आकर्षण पूर्वक कुम्भक करते हुए नासाग्रभागको देखनेसे योगासन हुआ करता है, योगिगणके लिये यह आसन सदा उपयोगी है ॥ ५१-५२ ॥

भुजङ्गासनम् ।

पादादिनाभिपर्यन्तमधोभूमा भुवि न्यसेत् ।
कराभ्यां च धरां धृत्वा ऊर्ध्वशीर्षः फणीव हि ॥ ४९ ॥
देहाऽग्निर्वर्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम् ।
जागर्त्ति भुजगी देवी भुजगासनसाधनात् ॥ ५० ॥

योगासनम् ।

उत्तानौ चरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोरपि ।
आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं करयुग्मकम् ॥ ५१ ॥
पूरकैर्वायुमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
योगासनं भवेदेतद्योगिनां योगसाधने ॥ ५२ ॥

मुद्रा प्रकरण ।

मुद्राका लक्षण और फल ।

जिन क्रियायोंके द्वारा प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि इन साधन अङ्गोंकी सिद्धिमें सहायता प्राप्त होती है, ऐसी सुकौशलपूर्ण क्रियाको मुद्रा कहते हैं। कोई मुद्रा इनके सब अङ्गोंकी सहायता करती है, कोई कोई इनमेंसे विशेष अङ्गोंकी सहायता करती है ॥ १-३ ॥

मुद्राके भेद ।

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयानबन्धमुद्रा, जालन्धरबन्धमुद्रा, मूलबन्धमुद्रा, महाबन्धमुद्रा, महावेधमुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणीमुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोलीमुद्रा; शक्तिचालिनीमुद्रा, ताडागीमुद्रा, माण्डूकीमुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, पञ्चधारणामुद्रा, आश्विनीमुद्रा, पाशिनी-

---

अथमुद्राप्रकरणम् ।

मुद्रालक्षणं फलञ्च ।

प्राणायामस्तथा प्रत्याहारो धारणध्यानके ।
समाधिः साधनाङ्गानामेषां सिद्धौ हि या हिता ॥ १ ॥
साहाय्यमादधातीह सुकौशलभरा क्रिया ।
मुद्रा सा प्रोच्यते धीरैर्योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ २ ॥
सहायिका भवेन्मुद्रा सर्वाङ्गानां हि काचन ।
काचिच्च तत्तदङ्गानामुपकारं करोति वै ॥ ३ ॥

मुद्राभेदाः ।

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम् ।
मूलबन्धो महाबन्धो महावेधश्च खेचरी ॥ ४ ॥
विपरीतकरी योनिर्वज्रोली शक्तिचालिनी ।
ताड़ागी चैव माण्डूकी शाम्भवी पञ्चधारणा ॥ ५ ॥

मुद्रा, काकीमुद्रा, मातङ्गीमुद्रा और भुजङ्गिनीमुद्रा, ये पच्चीस मुद्राएँ कहाती हैं, इनके साधनसे योगिगणको योग-सिद्धिकी प्राप्ति हुआ करती है ॥ ४–६ ॥

महामुद्रा ।

वामगुल्फको पायुमूलमें लगाकर और दक्षिणपाद दण्डवत् फैलाकर दोनों हाथोंसे पादाङ्गुली धारणकरके कण्ठ सङ्कोच करते हुए भ्रूमध्य दर्शन करके पुनः स्थिरभाव धारण करके कुम्भक किये हुए वायुको शनैः शनैः रेचन करे, वेगसे रेचन न करे, तदनन्तर इसका विपरीत करे अर्थात् दक्षिणगुल्फको गुह्य द्वारमें स्थापन करके वाम पादप्रसारण द्वारा वैसी ही क्रिया करे, पुनः उभय पादोंसे वैसी ही क्रिया करे, तो महामुद्राका साधन हुआ करता है। इस मुद्राके साधनसे नाना प्रकारके रोगोंकी शान्ति होती है और योग-की सिद्धि होती है ॥ ७–१० ॥

आश्विनी पाशिनी काकी मातङ्गी च भुजङ्गिनी ।
पञ्चविंशतिमुद्राः स्युः सिद्धिदा योगिनां सदा ॥ ६ ॥

महामुद्रा ।

पायुमूले वामगुल्फं सम्पीड्य च यथाक्रमम् ।
दक्षपादं प्रसार्याऽथ करयोरङ्गुलीं दधत् ॥ ७ ॥
कण्ठसंकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्यं निरीक्षयेत् ।
ततः शनैः शनैरेवं रेचयेत्तं न वेगतः ॥ ८ ॥
अनुसृत्य गुरोर्वाक्यं जानुस्थापितमस्तकः ।
वामेन दक्षिणेनाऽपि कृत्त्वोभाभ्यां पुनस्तथा ॥ ९ ॥
नाशयेत्सर्वरोगांश्च महामुद्रासुसाधनात् ।
सिद्धिदा योगमार्गस्य वदन्तीति पुराविदः ॥ १० ॥

नभोमुद्रा।

योगी सर्वदा सर्व कार्योंमें स्थिर रह कर उर्द्ध्वजिह्व होकर कुम्भकद्वारा वायु रोध करे तो नभोमुद्राका साधन हुआ करता है, इस मुद्राके साधनसे योगिगणके सब प्रकारके रोगोंकी शान्ति हुआ करती है ॥ ११ ॥

उड्डीयानबन्ध मुद्रा।

उदरको पश्चिमतान युक्त करके नाभिको आकुञ्चन करनेसे उड्डीयानबन्धमुद्रा हुआ करती है; यह मुद्रा मृत्युरूप मातङ्गके लिये सिंहरूप है। जितनी मुद्राएँ कही गई है उनमेंसे उड्डीयानबन्ध श्रेष्ठ है, इसके साधनसे विना प्रयास मुक्तिकी प्राप्ति हो सकी है ॥१२-१३॥

जालन्धरबन्ध मुद्रा।

कण्ठ देश संकोचन पूर्वक हृदयपर चिबुक लगानेसे ही जालन्धरबन्ध मुद्रा हुआ करती है, इसके द्वारा और सोलह प्रकारके आधार-

---

नभोमुद्रा।

यत्र यत्र स्थितो योगी सर्वकार्येषु सर्वदा।
ऊर्द्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा धारयेत्पवनं सदा।
नभोमुद्रा भवत्येषा योगिनां रोगनाशिनी ॥ ११ ॥

उड्डीयानबन्धमुद्रा।

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्द्ध्वं तु कारयेत्।
उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ १२ ॥
अन्यस्माद्बन्धनादेतदुड्डीयानं विशिष्यते।
उड्डीयाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ॥ १३ ॥

जालन्धरबन्धमुद्रा।

कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।
जालन्धरे कृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम् ॥ १४ ॥

बन्धोंमें सहायता मिलती है, यह मृत्युको भी जीत लेती है, सिद्धजालन्धरबन्ध योगिगणको सिद्धि प्राप्त कराता है, जो षट्मासतक इसका साधन करते हैं उनको सिद्धि लाभमें कुछ भी संशय नहीं रहता॥१४-१५॥

मूलबन्ध मुद्रा।

गुह्य प्रदेशमें वामगुल्फ रखकर योनि आकुञ्चन पूर्वक मेरुदण्डमें नाभिग्रन्थिको दबाकर, पुनः लिङ्गमूलपर दक्षिण गुल्फ दृढ रूपसे संबद्ध करनेसे मूलबन्धका साधन हुआ करता है; यह जरा नाश करनेवाला है। जो मनुष्य संसाररूप सागरको पार होनेकी इच्छा करता है वह अवश्य इस मुद्राका साधन करे, इसके द्वारा वायुकी सिद्धि होती है इस कारण साधकोंको उचित है कि आलसत्याग पूर्वक मौनी हो यत्नसे इस मुद्राका साधन करे॥ १६-१९॥

जालन्धरमहामुद्रा मृत्योश्च क्षयकारिणी।
सिद्धो जालन्धरो बन्धो योगिनां सिद्धिदायकः।
षण्मासमभ्यसेद्यो हि स सिद्धो नाऽत्र संशयः॥ १५॥

मूलबन्धमुद्रा।

पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुञ्चयेत्ततः।
नाभिग्रन्थिं मेरुदण्डे सम्पीड्य यत्नतः सुधीः॥ १६॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते॥ १७॥
संसारसागरं तर्त्तुमभिलष्यति यः पुमान्।
प्रच्छन्नो निर्जने भूत्वा मुद्रामेतां समभ्यसेत्॥ १८॥
अभ्यासाद्बन्धनस्याऽस्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
साधयेद्यत्नतस्तर्हि मौनी तु विजिताऽलसः॥ १९॥

महाबन्ध मुद्रा ।

वामगुल्फ द्वारा पायु मूल निरोध करके दक्षिण पाद द्वारा यत्न-पूर्वक वामगुल्फको दवाकर शनैः शनैः गुह्य देश परिचालित करके आकुञ्चन करते हुए जालन्धरबन्ध द्वारा प्राण वायुको धारण करनेसे महाबन्ध मुद्रा हुआ करती है। महाबन्धमुद्रा सब मुद्राओंसे श्रेष्ठ मुद्रा कही जाती है और जरा मृत्यु नाश करनेवाली है एवं मनोरथ सिद्ध करनेवाली है ॥ २०-२२ ॥

महावेध मुद्रा ।

पुरुषके विना जैसे स्त्रीके रूप यौवन और लावण्य विफल होते हैं वैसे ही महावेधके विना मूलबन्ध और महाबन्धमुद्रा निष्फल होती हैं। पहिले महाबन्ध मुद्रा अनुष्ठान पूर्वक उड्डीयान बन्ध करते हुए कुम्भक द्वारा वायु निरोध करनेसे ही महावेध मुद्राका साधन हुआ करता है । महावेध योगियोंको सिद्धि देनेवाली

महाबन्धमुद्रा ।

वामपादस्य गुल्फेन पायुमूलं निरोधयेत् ।
दक्षपादेन तद्गुल्फं सम्पीड्य यत्नतः सुधीः ॥ २० ॥
शनैः सञ्चालयेत्पार्ष्णिं योनिमाकुञ्चयेच्छनैः ।
जालन्धरे धृतप्राणो महाबन्धो निगद्यते ॥ २१ ॥
महाबन्धः परो बन्धो जरामरणनाशकः ।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववाञ्छितम् ॥ २२ ॥

महावेधमुद्रा ।

रूपयौवनलावण्यं नारीणां पुरुषं विना ।
मूलबन्धमहाबन्धौ महावेधं विना तथा ॥ २३ ॥
महाबन्धं समासाद्य उड्डीनकुम्भकं चरेत् ।
महावेधः समाख्यातो योगिनां सिद्धिदायकः ॥ २४ ॥

है। जो साधक प्रतिदिन महावेध सहित महाबन्ध और मूल-बन्धका आचरण करता है वही योगी श्रेष्ठ कहलाता है, उसको न तो मृत्यु और न जरा आक्रमण कर सकी है। श्रेष्ठ योगिगण यत्नपूर्वक इसका आचरण करें ॥ २३-२६ ॥

खेचरी मुद्रा ।

जिह्वाके नीचे जो नाडी हैं उसको छेदन करके निरन्तर रसनाको चालित करे और नवनीत द्वारा जिह्वाका दोहन और लोहमय यन्त्र द्वारा आकर्षण किया करे। प्रतिदिन इस प्रकार करनेसे जिह्वा दीर्घताको प्राप्त होकर क्रमशः भीतरकी ओर जाकर भ्रूद्वयके मध्यस्थलको स्पर्श करेगी। तालुके मध्यस्थ कपाल कुहर नामक गह्वर है, जिह्वाको उसी गह्वरमें विपरीत भावसे पहुंचाकर भ्रूयुगलके मध्यमें अवलोकन करनेसे खेचरीमुद्रा हुआ करती है। जो

मूलबन्धमहाबन्धौ महावेधसमन्वितौ ।
प्रत्यहं कुरुते यस्तु स योगी योगवित्तमः ॥ २५ ॥

न मृत्युतो भयं तस्य न जरा तस्य विद्यते ।
अनुष्ठेयः प्रयत्नेन वेधोऽयं योगिपुङ्गवैः ॥ २६ ॥

खेचरीमुद्रा ।

जिह्वाऽधो नाडीं संछिन्नां रसनां चालयेत्सदा ।
दोहयेन्नवनीतेन लौहयन्त्रेण कर्षयेत् ॥ २७ ॥

एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ।
यावद्गच्छेद्भ्रुवोर्मध्ये तदा भवति खेचरी ॥ २८ ॥

रसनां तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत् ।
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ २९ ॥

मनुष्य इस खेचरी मुद्राका अभ्यास करते हैं मूर्च्छा, क्षुधा और तृष्णा उनको क्लेश प्रदान नहीं कर सक्ती, आलस्य उनके शरीरमें नहीं रह सक्ता, रोग और मृत्यु भय दूर होकर वे देवदेहतुल्य देहको प्राप्त कर लेते हैं। जो खेचरी मुद्राका साधन करते हैं न तो अग्नि उनको दग्ध कर सक्ती है, न वायु उनको शुष्क कर सक्ता है, न जल उनके देहको गला सक्ता है और न सर्प उनको दंशन कर सक्ता है। खेचरी मुद्रासे देह अपूर्व लावण्ययुक्त हो जाता है और इसकी सिद्धिसे समाधिकी सिद्धि हुआ करती है, कपाल और वक्त्रके सम्मिलनसे रसनामें अद्भुत रसोंकी उत्पत्ति हुआ करती है। जो इस मुद्राका साधन करते हैं उनको रसनामें दिन दिन अद्भुत रसोंकी उत्पत्ति और उनके चित्तमें नव नव आनन्द भावोंका उद्भव हुआ करता है। उनको जिह्वामें पहिले लवणरस, पुनः क्षाररस, पुनः तिक्तरस, तदनन्तर कषायरस, पश्चात् नवनीत, घृत, क्षीर, दधि, तक्र, मधु, द्राक्षा, अमृत आदि विविधरसोंका आविर्भाव हुआ करता है। खेचरी मुद्राके साधनके लिये जिह्वाको नियमित करना प्रथम और सर्व प्रधान कार्य है, सो आवश्यक होनेपर विना छेदनके भी

न च मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा नैवाऽऽलस्यं प्रजायते।
न च रोगो जरा मृत्युर्देवदेहः स जायते ॥ ३० ॥
नाऽग्निना दह्यते गात्रं न शोषयति मारुतः।
न देहं क्लेदयन्त्यापो दंदशेन्न भुजङ्गमः ॥ ३१ ॥
लावण्यं जायते गात्रे समाधिश्च भवेद्ध्रुवम्।
कपालवक्त्रसंयोगे रसना रसमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥
नानारससमुद्भूतमानन्दं च दिने दिने।
आदौ लवणक्षारञ्च ततस्तिक्तकषायकम् ॥ ३३ ॥
नवनीतं घृतं क्षीरं दधितक्रमधूनि च।
द्राक्षारसं च पीयूषं जायते रसनोदकम् ॥ ३४ ॥
मुद्रामिमां साधयितुं जिह्वानियमनं पुरः।

हो सक्ता है। वह कार्य जिह्वा चलान रूप तालव्य क्रियासे भी हो सक्ता है। वह क्रिया तन्त्रोंमें अतिगुप्त है, केवल योगचतुष्टयके ज्ञाता योगिराज ही उस क्रियाका उपदेश दे सक्ते हैं ॥ ३७–३७ ॥

विपरीतकरणी मुद्रा ।

सूर्यनाडी नाभिमूलमें और चन्द्रनाडी तालुमूलमें विद्यमान है, सहस्रदल कमलसे जो पीयूषधारा प्रवाहित हुआ करती है सूर्य नाड़ी उसको ग्रहण कर जाती है, इस कारणसे ही जीवगण मृत्युग्रासमें पतित हुआ करते हैं, यदि कार्यसुकौशलसे चन्द्रनाड़ी द्वारा वह अमृत पान किया जाय तो कदापि मृत्यु आक्रमण नहीं कर सक्तो। इस कारणसे योगसाधन द्वारा सूर्य नाड़ीको ऊर्द्ध्वमें और चन्द्रनाडोको अधोभागमें ले आना योगीका कर्तव्य है, इस विपरीत करणी मुद्राके आचरणसे नाड़ियोंको वैसी अवस्थामें ला सक्ते हैं, मस्तकको पृथिवीपर स्थापन करके कर द्वयका आधार करते हुए पादयुगलको

प्रधानं तद्धि भवति जिह्वायाश्छेदनं विना ॥ ३५ ॥
जिह्वाचालनतालव्यक्रिययाऽपि च सिध्यति ।
प्रच्छन्नेयं क्रिया बोध्या तन्त्रशास्त्रेषु नित्यशः ॥ ३६ ॥
चतुर्विधस्य योगस्य विज्ञाता योगिपुङ्गवः ।
क्रियामुपादिशत्येतां योगसिद्धिकरीं पराम् ॥ ३७ ॥

विपरीतकरणीमुद्रा ।

नाभिमूले वसेत्सूर्यस्तालुमूले च चन्द्रमाः ।
अमृतं ग्रसते सूर्यस्ततो मृत्युवशो नरः ॥ ३८ ॥
निपुणं चन्द्रनाड्या वै पीयते यदि सा सुधा ।
कर्हिचिन्न हि तस्याऽस्ति भीतिर्मृत्योर्हि योगिनः ॥ ३९
ऊर्द्ध्वञ्च योजयेत्सूर्यं चन्द्रञ्चाऽधः समानयेत् ।
विपरीतकरी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ४० ॥
भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः ।

ऊर्द्ध्व दिशामें उठाकर कुम्भक द्वारा वायु निरोध करनेसे विपरीत-करणी मुद्रा हुआ करती है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस मुद्राका साधन किया करते हैं, जरा और मृत्यु उनके निकट पराजयको प्राप्त होते हैं और वे सर्वत्र सिद्ध नामसे प्रसिद्ध होते हैं, प्रलय काल-में भी वे योगी भयके कारण अवसन्नताको नहीं प्राप्त होते ॥३८-४२॥

योनि मुद्रा।

सिद्धासनमें उपवेशन करके कर्णद्वय वृद्ध अङ्गुष्ठद्वय द्वारा, नेत्रयुगल तर्जनीद्वय द्वारा, नासिकाद्वय मध्यमाद्वय द्वारा और मुख अनामिका द्वय द्वारा निरुद्ध करके काकी मुद्रा द्वारा प्राण वायु आकर्षण पूर्वक अपान वायुके साथ मिलाते हुए शरीरस्थ षट् चक्रों-में मन लेजाकर 'हुँ' और "हंस" इन दोनों मन्त्रोंके जप द्वारा देवी कुलकुण्डलिनीको जगाते हुए जीवात्माके साथ मिलाकर उनको सहस्रदल कमलमें लेजाकर जब साधक ऐसा ध्यान करे कि मैं शक्ति-मय होकर शिवके साथ मिलित हूं, परमानन्दरूप विहार कर रहा हूं

ऊर्द्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा विपरीतकरी मता ॥ ४१ ॥
मुद्रा च साधयेन्नित्यं जरां मृत्युं च नाशयेत्।
स सिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति ॥ ४२ ॥

'योनिमुद्रा।

सिद्धासनं समासाद्य कर्णाक्षिनासिकामुखम्।
अङ्गुष्ठतर्जनीमध्याऽनामिकाभिश्च साधयेत् ॥ ४३ ॥
काकया प्राणं समाकृष्य अपाने योजयेत्ततः।
षट्चक्राणि क्रमाद्ध्यात्वा हुं हंस मनुना सुधीः ॥ ४४ ॥
चैतन्यमानयेद्देवीं निद्रिता या भुजङ्गिनी।
जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य शिरोऽम्बुजे ॥ ४५ ॥
स्वयं शक्तिमयो भूत्वा शिवेन योजयेत्स्वकम्।
नानासुखं विहारं च चिन्तयेत्परमं सुखम् ॥ ४६ ॥

और शिवशक्तिसंयोगरूप मैं ही आनन्दमय ब्रह्म हूँ तभी योनि मुद्राका साधन होता है। यह मुद्रा परम गोपनीय और देवताओं को भी दुर्लभ है, इसके साधारण साधनसे ही साधकको सिद्धि की प्राप्ति हुआ करती है और इसके द्वारा अनायाससे समाधि लाभ हुआ करता है। जो मनुष्य योनिमुद्राका साधन करते हैं उनको ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान, गुरुदारागमन आदि महापाप भी स्पर्श नहीं कर सके, पृथिवी पर जो वडे वडे पातक और महापातक हैं वे भी इस मुद्राके आचरणसे नष्ट हो सके हैं, जिनको मुक्ति लाभ करनेकी इच्छा होती है वे ही इस मुद्राका साधन किया करते हैं॥ ४३-५०॥

वज्रोली मुद्रा।

जो योगीयोगके अन्य नियमोंको न मानकर अपनी इच्छाके अनुसार आचरण करनेपर भी वज्रोली क्रियाके साधनको जानते हैं वे योगिगण सिद्धि प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। इसके साधनमें दो

शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं भुवि भावयेत्।
आनन्दमानसो भूत्वा अहं ब्रह्मेति चिन्तयेत्॥ ४७॥
योनिमुद्रा परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा।
सकृत्त लाभसंसिद्धिः समाधिस्थः स एव हि॥ ४८॥
ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापो गुरुतल्पगः।
एतैः पापैर्न लिप्येत योनिमुद्रानिबन्धनात्॥ ४९॥
यानि पापानि घोराणि उपपापानि यानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति योनिमुद्रानिबन्धनात्।
तस्मादभ्यसनं कुर्याद्यदि मुक्तिं समिच्छति॥ ५०॥

वज्रोलीमुद्रा।

स्वेच्छया वर्त्तमानोऽपि योगोक्तैर्नियमैर्विना।
वज्रोलीं यो विजानाति स योगी सिद्धिभाजनम्॥ ५१॥

विशेष फलोंकी प्राप्ति होती है, प्रथम तो क्षीर भोजनका फल और द्वितीय नारीका वशीभूत होना। स्त्री सङ्ग करते समय योगक्रिया द्वारा वीर्यको पुरुष अथवा स्त्रीके यत्नपूर्वक इन्द्रिय आकुञ्चन द्वारा चढ़ा लेनेसे वज्रोलीमुद्राका साधन हुआ करता है। एक चांदीकी बनी हुई नाल शनैः शनैः लिङ्ग द्वारमें प्रवेश करके पुनः उस नाल-में फूंक देकर वायु संचारका अभ्यास करना उचित है। तत् पश्चात् नारीयोनिमें पतित बिन्दुको आकर्षण कर लेवे अथवा अपने चलित बिन्दुको बीचमें ही रक्षा करके खींच लेवे। तब इस प्रकारसे बिन्दुकी रक्षा करनेसे मृत्युका जय और योगकी प्राप्ति हो जाती है क्योंकि बिन्दुपातसे ही मृत्युकी प्राप्ति और बिन्दुके धारण-से ही जीवनकी रक्षा हुआ करती है। जो इस मुद्राके साधनसे बिन्दुकी रक्षा किया करते हैं उनके देहमें सुन्दर सुगन्धि हो जाती है और जबतक वह योगी बिन्दुको धारण किये रहता है तबतक कदापि उसको मृत्युका भय नहीं होता। यह निश्चय की हुई

तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये दुर्लभं यस्य कस्यचित्।
क्षीरं चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्त्तिनी ॥ ९२ ॥
मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुञ्चनमभ्यसेत्।
पुरुषोऽप्यथवा नारी वज्रोलीसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ९३ ॥
यत्नतः शस्तनालेन फूत्कारं वज्रकन्दरे।
शनैः शनैः प्रकुर्वीत वायुसञ्चारकारणात् ॥ ९४ ॥
नारीभगे पतेद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चालितं च निजं बिन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् ॥ ९५ ॥
एवं संरक्षयेद्बिन्दुं मृत्युं जयति योगवित्।
मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ॥ ९६ ॥
सुगन्धो योगिनो देहे जायते बिन्दुधारणात्।
यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालभयं कुतः ॥ ९७ ॥

बात है कि जब मन चलायमान होता है तभी मनुष्यका वीर्य भी चलायमान होता है अर्थात् वीर्यसे मनका एक ही सम्बन्ध है और शुक्र स्थिर रहनेसे जीवन भी स्थिर रहता है इस कारण यत्नपूर्वक शुक्रकी रक्षा करना उचित है। जो योगी ऋतुमती स्त्रीके रज और अपने वीर्यको इस आकर्षण क्रियासे खेंचकर धारण कर सक्ता है वही योगको जाननेवाला है इसमें सन्देह नहीं। सहजोली और अमरोली ये दोनों क्रियाएं वज्रोलीके ही अन्तर्गत हैं, दग्धगोमयसे भस्म बनाकर उसे जलके संयोगसे कार्यकारी करके पुनः वज्रोली क्रिया साधनके अर्थ मैथुन करके स्त्री पुरुष आनन्द पूर्वक आसनस्थित होकर उत्सव रहित हो अपने अङ्गपर उसको धारण करें। *इस प्रकारकी अन्तर क्रियाको सहजोली कहते हैं। योगि-*गणको श्रद्धायुक्त होकर इसका आचरण करना उचित है, यह साधकोंके लिये शुभकारी और भोगयुक्त होनेपर भी मुक्तिको देने वाली है। यह साधन पुण्यवान्को, धैर्यवान्को, तत्त्वदर्शीको और

चित्ताऽऽयत्तं नृणां शुक्रं शुक्राऽऽयत्तं च जीवितम् ।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ ५८ ॥
ऋतुमत्या रजोऽप्येवं बिजं बिन्दुं च रक्षयेत् ।
मेढ्रेणाऽऽकर्षयेदूर्ध्वं सम्यागभ्यासयोगवित् ॥ ५९ ॥
सहजोलिश्चामरोलिर्वज्रोल्या भेद एव ते ।
जले सुभस्म निक्षिप्य दग्धगोमयसम्भवम् ॥ ६० ॥
वज्रोली मैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुंसोः स्वाङ्गलेपनम् ।
आसीनयोः सुखेनैव मुक्तव्यापारयोः क्षणात् ॥ ६१ ॥
सहजोलिरियं प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभिः सदा ।
अयं शुभकरो योगो भोगयुक्तोऽपि मुक्तिदः ॥ ६२ ॥
अयं यागः पुण्यवतां धीराणां तत्त्वदर्शिनाम् ।

मात्सर्य रहितको सिद्ध हुआ करता है और मात्सर्य युक्त पुरुषको यह कदापि फलदायी नहीं होता। शिवाम्बुनिर्गत होते समय पित्तके कारण उत्कट और उष्ण प्रथम धाराको त्याग करके और असार अन्त धाराको भी ग्रहण न करके केवल मध्यकी शीतल और पित्तादि दोषवर्जित धाराका सदा सेवन करनेसे अमरोली नामक इस मुद्राकी अन्तर क्रियाका साधन हुआ करता है, कापालिक मतानुयायी इसका ऐसा नाम दिया गया है। जो पुरुष अमर वारुणीको नासिका द्वारा ग्रहण करके प्रतिदिन पान करते हुए वज्रोली मुद्राका अभ्यास किया करते हैं तभी उस क्रियाका नाम अमरोली क्रिया कहा जाता है। इस अमरोली साधनसे प्राप्त हुई चन्द्रसुधा पूर्व कथित भस्ममें मिलाकर यदि मस्तकपर धारण की जाय तो दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति हुआ करती है। जो कामिनी अभ्यास योग द्वारा पुरुषविन्दुको आकर्षण करके वज्रोली मुद्रा द्वारा अपने रजकी रक्षा कर सकती है शास्त्रमें उसीका नाम योगिनी कहा है। उस योगिनीका शरीरस्थ रज कुछ भी नष्ट नहीं होता

निर्मत्सराणां सिध्येत न तु मात्सर्यशालिनाम् ॥ ९३ ॥
पित्तोल्वणत्वात्प्रथमाऽम्बुधारां
निपेव्यते शीतलमध्यधारा ।
विहाय निःसारतयाऽन्त्यधाराम् ।
कापालिके खण्डमतेऽमरोली ॥ ९४ ॥
अमरीं यः पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन्दिने दिने ।
वज्रोलीमभ्यसेत्सम्यगमरोलीति कथ्यते ॥ ९५ ॥
अभ्यासान्निःसृतां चान्द्रीं विभूत्या सह मिश्रयेत् ।
धारयेदुत्तमाङ्गेषु दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ९६ ॥
पुंसो बिन्दुं समाकुञ्च्य सम्यगभ्यासपाटवात् ।
यदि नारी रजो रक्षेद्वज्रोल्या साऽपि योगिनी ॥ ९७ ॥
तस्याः किञ्चिद्रजो नाशं न गच्छति न संशयः ।

और उसके अङ्गमें नाद और विन्दुकी प्राप्ति हो जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं। वज्रोली मुद्राके साधनके अभ्यास द्वारा जब पुरुषविन्दु और स्त्रीरज इन दोनोंकी स्थिति अपने शरीरमें हो जाती है तब सब प्रकारकी सिद्धियोंकी प्राप्ति हुआ करती है और जब स्त्री आकुञ्चन क्रिया द्वारा रजकी रक्षा कर सकी है तभी वह योगिनी भूत भविष्यत् ज्ञानवती हो जाती है और आकाश मार्गमें भ्रमण करनेकी शक्तिभी उसमें हो जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं। वज्रोली मुद्राके अभ्यास द्वारा योगीको शरीरकी पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है, इस पुण्यकारक योगमें भोगका सम्बन्ध रहनेपर भी यह मुक्तिका देनेवाला है। पुरुषका वज्रोली अभ्यास अथवा स्त्रीका वज्रोली अभ्यास, सहजोली क्रिया अथवा अमरोली क्रिया, ये सब इसी मुद्राके अन्तर्गत हैं, यह मुद्रा उपनिषत् और तन्त्रोंमें अति गुप्त है और इतनी कठिन है कि क्षुर धाराके अवलेहनके समान है और भी अनेक क्रियाएं इसके अन्तर्गत हैं जिनका योग चतुष्टय-

---

तस्याः शरीरे नादश्च विन्दुतामेव गच्छति ॥ ६८ ॥
स विन्दुस्तद्रजश्चैव एकीभूय स्वदेहगौ ।
वज्रोल्यभ्यासयोगेन सर्वसिद्धिं प्रयच्छतः ॥ ६९ ॥
रक्षेदाकुञ्चनादूर्द्ध्वं या रजः सा हि योगिनी ।
अतीताऽनागतज्ञानं खेचरी च भवेद्ध्रुवम् ॥ ७० ॥
देहसिद्धिं च लभते वज्रोल्यभ्यासयोगतः ।
अयं पुण्यकरो योगो भोगे भुक्तेऽपि मुक्तिदः ॥ ७१ ॥
वज्रोलीसाधनं पुंसस्तस्या वा साधनं स्त्रियाः ।
सहजोली चामरोली चाऽत्रैवान्तर्भवेद्धि वै ॥ ७२ ॥
गोपितेयं क्रिया सर्वा तन्त्रेषूपनिषत्सु वै ।
अत्ता च दुष्करा यादृक् क्षुरधाराऽवलेहनम् ॥ ७३ ॥
अन्तर्भूताः क्रियाश्चाऽन्या वेद्या या योगवित्तमैः ।

साधनज्ञाता योगी ही उपदेश दे सकते हैं। मन्त्रयोग-अन्तर्गत लतासाधनसे इसका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। इस मुद्राका विज्ञान यह है कि वैषम्यावस्था होनेपर प्रकृति पुरुषसे अलग रहकर सृष्टि प्रसार करती है, परन्तु साम्यावस्थामें प्रकृति पुरुषमें मिल जानेसे परमानन्द अद्वैत पदकी प्राप्ति होती है अस्तु चाहे जैसे हो सुकौशलपूर्ण योग साधन द्वारा ऊर्ध्वरेतस्त्व होना इसका प्रथम लक्ष्य है, सात्विक धृतिका सम्पादन करना इसका चरम फल है और वीर्यमें रजके लयके द्वारा मनोजयमें समर्थ होना इसका परम पुरुषार्थ है। योगिराज गुरुकी विना सहायतासे यह मुद्रा कभी नहीं प्राप्त होती और जितेन्द्रिय और वीतराग साधक ही इस साधनका अधिकारी होता है॥ ५१–८१॥

योगमार्गाभिज्ञानद्भिरुपदेश्या भवन्ति ताः॥ ७४॥
इयं हि मन्त्रयोगस्य लतासाधनमित्युभ।
सम्बन्धवत्यौ विज्ञेये विज्ञानं चाऽपि कथ्यते॥ ७५॥
वैषम्याऽवस्थया यद्वत्पृथग्भावं प्रपद्य वै।
पुरुषात्प्रकृतिः सर्गं विदधाति निरन्तरम्॥ ७६॥
सा तस्मिन्पुरुषे साम्यामवस्थां प्राप्य लीयते।
ततश्च परमानन्दमद्वैतमुपलभ्यते॥ ७७॥
ऊर्ध्वरेतस्त्वसम्प्राप्तिः कुशलैर्योगसाधनैः।
लक्ष्यमस्या विनिर्दिष्टं प्रथमं परमर्षिभिः॥ ७८॥
साधनं सात्त्विकधृतेश्चरमं फलमुच्यते।
सङ्गत्या वीर्यरजसोर्मनसो विजयाक्रिया॥ ७९॥
परमः पुरुषार्थोऽयं प्राप्त्युपायस्तु कथ्यते।
योगिमुख्यगुरूणां हि साहाय्यादेव केवलम्॥ ८०॥
जितेन्द्रिया वीतरागा अस्याः स्युरधिकारिणः॥ ८१॥

शक्तिचालिनी मुद्रा।

परम देवता कुलकुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन फेर लगाकर भुजङ्गाकृति हो मूलाधारपद्ममें स्थित है। वह शक्ति जबतक निद्रिता रहती है तबतक कोटि कोटि योगक्रिया करनेसेभी जीवको ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकी और वह पशुवत् अज्ञानी ही रहता है। जिस प्रकार कुञ्चिका द्वारा द्वार समुद्घाटित हुआ करते हैं उसी प्रकार कुलकुण्डलिनी शक्तिके जगानेसे ब्रह्मद्वार अपने आप ही खुल जाता है और इस प्रकारसे जीवको ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। वस्त्र द्वारा नाभिदेश वेष्टन पूर्वक गोपनीय गृहमें आसन स्थित होकर शक्तिचालिनी मुद्राका अभ्यास करना उचित है; परन्तु नग्नावस्थामें रहकर खुले हुए स्थानमें कदापि यह साधन न किया जाय। वितस्ति परिमित और चारअङ्गुली विस्तृत, सुकोमल, धवल और सूक्ष्म वस्त्र द्वारा नाभिको वेष्टन करके उस वस्त्रको कटिसूत्र द्वारा सम्बद्ध किया जाय,

---

शक्तिचालिनीमुद्रा।

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता।
शयिता भुजगाऽऽकारा सार्द्धत्रिवलयाऽन्विता॥ ८१॥
यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा।
ज्ञानं न जायते तावत्कोटियोगविधेरपि॥ ८२॥
उद्घाटयेत्कपाटं च यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्याः प्रबोधेन ब्रह्मद्वारं प्रभेदयेत्॥ ८३॥
नाभिं संवेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नो बहिः स्थितः।
गोपनीयगृहे स्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत्॥ ८४॥
वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरङ्गुलम्।
मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम्।
एवमम्बरयोगं च कटिसूत्रेण कल्पयेत्॥ ८५॥

तत् पश्चात् भस्म द्वारा समस्त शरीर लेपन पूर्वक सिद्धासन पर बैठ कर प्राण वायुको नासिका द्वारा आकर्षण करके बलपूर्वक अपान वायुके साथ संयुक्त किया जाय और जब तक वायु सुषुम्ना नाड़ीके भीतर जाकर प्रकाशित न हो तबतक अश्विनी मुद्रा द्वारा शनैः शनैः गुह्य देशको आकुञ्चन करना उचित है। इस प्रकारसे निःश्वास रोध कर कुम्भक द्वारा वायुनिरोध करनेसे भुजङ्गाकारा कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर ऊपरकी ओर चलने लगती है और पीछे सहस्रदल कमलमें पहुंचकर शिवसंयोगिनी हो जाती है। शक्तिचालिनी मुद्राके विना योनिमुद्रामें पूर्ण सिद्धि नहीं होती इस कारण आगे इस मुद्राका अभ्यास करके तत् पश्चात् योनिमुद्रा अभ्यास करने योग्य है। यही शक्तिचालिनी मुद्राका वर्णन है, अति यत्न पूर्वक इसको गोपन रखके प्रतिदिन इसका अभ्यास करना उचित है। यह मुद्रा बहुत ही गोपनीय है, इसके द्वारा जरा और मृत्युके हाथसे जीव बचसका है इस कारण सिद्धिकी इच्छा करनेवाले योगिगण इसका अवश्य अभ्यास करें। जो

भस्मना गात्रमालिप्य सिद्धासनमथाऽऽचरेत्।
नासाभ्यां प्राणमाकृष्य अपाने योजयेद्बलात् ॥ ८७ ॥
तावदाकुञ्चयेद्गुह्यं शनैरश्विनिमुद्रया।
यावद्वायुः सुषुम्नायां न प्रकाशमवाप्नुयात् ॥ ८८ ॥
तदा वायुप्रबन्धेन कुम्भिका च भुजङ्गिनी।
बद्धश्वासस्ततो भूत्वा ऊर्द्ध्वमार्गं प्रपद्यते ॥ ८९ ॥
योनिमुद्रा न सिध्येद्धि शक्तिचालनमन्तरा।
आदौ चालनमभ्यस्य योनिमुद्रां समभ्यसेत् ॥ ९० ॥
इति ते कथितं सौम्य कपालशक्तिचालनम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन प्रत्यहं तत्समभ्यसेत् ॥ ९१ ॥
मुद्रेयं परमा गोप्या जरामरणनाशिनी।
तस्मादभ्यसनं कार्यं योगिभिः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ ९२ ॥

योगी प्रतिदिन इस मुद्राका अभ्यास करते हैं अष्ट सिद्धियां उनके करतलगत हो जाती हैं और उनको विग्रहसिद्धिकी प्राप्ति होकर उनके सब रोगोंकी शान्ति हो जाती है ॥ ८२-९३ ॥

ताडागी मुद्रा ।

पश्चिमोत्तान आसनपर बैठकर उदरको तडागाकृति करके कुम्भक करनेसे ताडागी मुद्रा हुआ करती है, यह एक प्रधान मुद्रा है इसके द्वारा जरा और मृत्यु जय किया जा सक्ता है ॥ ९४ ॥

माण्डुकी मुद्रा ।

मुख विवर मुद्रित करके उद्र्ध्वकी ओर तालु विवरकी ओर जिह्वा मूलको चलाकर जिह्वा द्वारा धीरे धीरे सहस्रदल कमल विनिर्गत सुधाधारा पान करनेसे माण्डुकी मुद्रा हुआ करती है, इसके साधनसे शरीरमें पूर्ण बलका संचार होता है, केशपकता दूर होती है और यौवनकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ९५-९६ ॥

नित्यं यः कुरुते योगी सिद्धिस्तस्य करे स्थिता ।
तस्य विग्रहसिद्धिः स्याद्रोगाणां संक्षयो भवेत् ॥ ९३ ॥

ताड़ागीमुद्रा ।

उदरं पश्चिमोत्तानं कृत्वा चैव तड़ागवत् ।
ताडागी सा परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ९४ ॥

माण्डूकीमुद्रा ।

मुखं सम्मुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत् ।
शनैर्ग्रसेत्तदमृतं माण्डूकीं मुद्रिकां विदुः ॥ ९५ ॥
वलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम् ।
न केशे जायते पाको माण्डूकीं यः समाचरेत् ॥ ९६ ॥

शाम्भवी मुद्रा ।

भ्रूद्वयके मध्यस्थलमें दृष्टि रखकर एकान्त मन हो परमात्माके रूपका दर्शन करनेसे शाम्भवी मुद्रा हुआ करती है, यह मुद्रा सर्व तन्त्रोंमें गोपनीय कही गई है। क्या वेद, क्या पुराण सब शास्त्र ही गणिकाकी नाई प्रकाशित हैं; परन्तु शाम्भवी मुद्रा कुलकामिनीकी नाईं अतःव गोपनीय है। जो शाम्भवी मुद्रासे परिज्ञात हैं वे आदिनाथ तुल्य हैं, वे ही नारायणस्वरूप और सृष्टिकर्ता ब्रह्मा स्वरूप हैं। जो साधक इस मुद्राका साधन करते हैं वे मूर्तिमान् ब्रह्मस्वरूप हैं इसमें सन्देह नहीं, यह सत्य सत्य ही है यह वाक्य श्री महादेवजीने सत्य ही कहा है ॥९७-१०० ॥

पञ्च धारणा मुद्रा ।

शाम्भवी मुद्राका वर्णन हो चुका अब पञ्च धारणामुद्रा कही जा रही है सुनो। यह पञ्चधारणा मुद्रा सिद्ध होनेसे इस संसारमें ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं है जिसकी प्राप्ति नहीं होसक्ती। पञ्चविध धारणा

शाम्भवीमुद्रा ।

नेत्रान्तरं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत् ।
सा भवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ९७ ॥
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
इयं तु शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ॥ ९८ ॥
स एव आदिनाथश्च स च नारायणः स्वयम् ।
स च ब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शाम्भवीम् ॥ ९९ ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमुक्तं महेश्वरि ।
शाम्भवीं यो विजानीयात्स च ब्रह्म न चाऽन्यथा ॥ १०० ॥

पञ्चधारणामुद्रा ।

कथिता शाम्भवी मुद्रा श्रृणुष्व पञ्चधारणाम् ।
धारणां वै समासाद्य किन्न सिध्यति भूतले ॥ १०१ ॥

मुद्रा सिद्ध होनेसे मानवगण इस शरीरसे ही सुरलोक गमनागमन कर सक्ते हैं और वे मनोगतित्व और खेचरत्वको लाभ कर लेते हैं ॥ १०१-१०२ ॥

पार्थिवीधारणा मुद्रा ।

पृथिवी तत्त्वका वर्ण हरितालकी नाईं, इसका बीज लकार (ल), इसकी आकृति चतुष्कोणविशिष्ट और देवता इसके ब्रह्मा हैं। योग प्रभावसे इस पृथिवी तत्त्वको हृदयके बीचमें प्रकाशित करके चित्तके साथ एकत्रित करके प्राण वायु आकर्षण पूर्वक पांच घड़ीतक कुम्भक योग अभ्यास करनेसे पृथिवी धारणा हुआ करती है, इसका दूसरा नाम अधोधारणा मुद्रा है, इसके अभ्याससे योगी पृथिवीको जय कर सक्ता है अर्थात् पृथिवीके यावन्मात्र पदार्थ उसके वशीभूत हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन इस पृथिवीधारणा मुद्राका अभ्यास करता है वह साक्षात् मृत्युञ्जयके तुल्य होकर पृथिवीपर विचरण करता रहता है ॥ १०३-१०४ ॥

अनेन नरदेहेन स्वर्गेषु गमनाऽऽगमम् ।
मनोगतिर्भवेत्तस्य खेचरत्वं न चाऽन्यथा ॥ १०२ ॥

पार्थिवीधारणामुद्रा ।

यत्तत्त्वं हरितालवर्णसदृशं भौमं लकाराऽन्वितं
वेदास्रं कमलासनेन सहितं कृत्वा हृदि स्थायि तत् ।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्तान्वितं धारये-
देषा स्तम्भकरी सदा क्षितिजयं कुर्यादधोधारणा ॥ १०३ ॥
पार्थिवीं धारणामुद्रां यः करोति च नित्यशः ।
मृत्युञ्जयः शिवः सोऽपि स सिद्धो विचरेद्भुवि ॥ १०४ ॥

आम्भसी धारणामुद्रा ।

जलतत्त्वका वर्ण शङ्ख शशि और कुन्दवत् धवल, इसकी आकृति चन्द्रवत्, वीज वकार (व) और देवता विष्णु हैं। योगप्रवाहसे हृदयके बीचमें जलतत्त्वका उदय करके प्राण वायु आकर्षण द्वारा एकाग्रचित्त हो पांच घड़ीतक कुम्भक करनेसे जल धारणा अर्थात् आम्भसी मुद्रा हुआ करती है। इस मुद्राके अभ्यासमे जलके वीच-का सब भय दूर हो जाता है और असह्यभाव भयका पुनः उदय नहीं होता। जो योगवित् साधक इस मुद्राको जान लेते हैं भीषण गम्भीर जलके वीच डूबनेपर भी उनका मृत्यु नहीं होता। यह आम्भसी मुद्रा परम श्रेष्ठ है और अतीव गोपनीय है, मैं सत्य कहता हूँ कि इसके प्रकाश करनेसे सिद्धिकी हानि हुआ करती है ॥ १०५-१०७॥

आग्नेयी धारणामुद्रा ।

नाभिस्थल अग्नितत्त्वका स्थान है, इसका वर्ण इन्द्रगोप कीटकी नाईं, बीज रकार (र) आकृति त्रिकोण और देवता रुद्र हैं। यह तत्त्व तेजःपुञ्जशाली, दिप्तिमान् और सिद्धिदायक है। योगाभ्यास द्वारा

आम्भसीधारणामुद्रा ।

शङ्खेन्दुप्रतिमं च कुन्दधवलं तत्त्वं किलालं शुभं
तत्पीयूषवकारबीजसहितं युक्तं सदा विष्णुना ।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्तान्वितं धारये-
देषा दुःसहतापपापहरणी स्यादाम्भसीधारणा ॥ १०५॥
आम्भसीं परमां मुद्रां यो जानाति स योगवित् ।
गभीरेऽपि जले घोरे मरणं तस्य नो भवेत् ॥ १०६ ॥
इयं तु धारणा मुद्रा गोपनीया प्रयत्नतः ।
प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मि च तत्त्वतः ॥ १०७॥

आग्नेयीधारणामुद्रा ।

यन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं बीजं त्रिकोणान्वितं
तत्त्वं तेजसमाप्रदीप्तमरुणं रुद्रेण यत्सिद्धिदम् ।

अग्नितत्त्वका उदय करके एकाग्रचित्त हो पांच घड़ीतक कुम्भक द्वारा प्राण वायु धारण करनेसे आग्नेयी धारणा हुआ करती है। इसके अभ्याससे संसार भय दूर हो जाता है और अग्निसे भी साधककी मृत्यु नहीं होती। यदि साधक प्रदीप्तवह्निके बीचमें निपतित हो तो भी इस मुद्राके प्रभावसे जीवित रहेगा और कदापि मृत्यु उसको ग्रहण नहीं कर सकेगी॥ १०८-१०९॥

वायवी धारणामुद्रा ।

वायुतत्त्वका वर्ण मर्दित अञ्जनकी नाईं और धूम्रकी नाईं कृष्ण-वर्ण, बीज यकार (य) और देवता ईश्वर है। यह तत्त्व सत्त्वगुणमय है, योगाभ्यास द्वारा इस तत्त्वका उदय करके एकाग्रचित्त हो कुम्भक द्वारा पांच घड़ी तक प्राणवायु धारण करनेसे वायवी धारणा सिद्ध होती है। इस मुद्राके अभ्याससे वायु द्वारा साधककी मृत्यु नहीं होती और साधकको शून्य मार्गमें विचरण करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। यह मुद्रा श्रेष्ठ कही जाती है, इसके द्वारा जरा और मृत्युभय नाश होता है। इस मुद्रामें सिद्धिप्राप्त साधक वायुसे कदापि मृत्युको प्राप्त नहीं होता और गगनमार्गमें विचरण कर सक्ता है। जो

प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्ताऽन्वितं धारये-
देषा कालगभीरभीतिहरणी वैश्वानरी धारणा॥ १०८॥
प्रदीप्ते ज्वलिते वह्नौ संपतेद्यदि साधकः।
एतन्मुद्राप्रसादेन स जीवति न मृत्युभाक्॥ १०९॥

वायवीधारणामुद्रा ।

यद्भिन्नाऽञ्जनपुञ्जसन्निभमिदं धूम्राऽवभासं परं
तत्त्वं सत्त्वमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो देवता।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्ताऽन्वितं धारये-
देषा खे गमनं करोति यमिनां स्याद्वायवी धारणा॥ ११०॥
इयं तु धारणा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।
वायुना म्रियते नाऽपि खे गतेश्च प्रदायिनी॥ १११॥

मनुष्य शठ अथवा भक्तिहीन है उसको कदापि यह मुद्रा प्रदान न की जाय, शठ अथवा भक्तिहीनको यह मुद्रा प्रदान करनेसे अपनी सिद्धिकी हानि होती है ॥ ११०-११२ ॥

आकाशीधारणा मुद्रा ।

आकाशतत्त्वका वर्ण विशुद्ध सागरवारिकी नाईं, बीज हकार (ह) और देवता सदाशिव है। इस आकाशतत्त्वको अभ्यास द्वारा उदित करके एकाग्रचित्त हो प्राणवायु आकर्षण पूर्वक पांचघड़ी तक कुम्भक करनेसे आकाशीधारणाकी सिद्धि होती है। इसके साधनसे देवत्व और मुक्तिलाभ होता है, जो इस धारणाको जानते हैं वेही परमयोग वेत्ता हैं, उनको कदापि मृत्यु ग्रास नहीं कर सकती अर्थात् वे इच्छा-मृत्यु होकर प्रलय काल तक रह सक्ते हैं ॥११३-११४॥

आश्विनी मुद्रा ।

पुनः पुनः गुह्यद्वार आकुञ्चन और प्रसारण करनेसे आश्विनीमुद्रा हुआ करती है, यह मुद्रा प्रबोधकारिणी कही जाती है। परमश्रेष्ठ

शठाय भक्तिहीनाय न देया यस्य कस्यचित् ।
दत्ते च सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मि च पण्डिते ! ॥ ११२ ॥

आकाशीधारणामुद्रा ।

यस्मिन्धौ वरशुद्धवारिसदृशं व्योमं परं भासितं
तत्त्वं देवसदाशिवेन सहितं बीजं हकाराऽन्वितम् ।
प्राणं तत्र विलीय पञ्चघटिकाश्चित्ताऽन्वितं धारये-
देषा मोक्षकपाटभेदनकरी कुर्यान्नभोधारणाम् ॥ ११३ ॥
आकाशीधारणामुद्रां यो वेत्ति स च योगवित् ।
न मृत्युर्जायते तस्य प्रलयेऽपि न सीदति ॥ ११४ ॥

आश्विनीमुद्रा ।

आकुञ्चयेद्गुदद्वारं भूयोभूयः प्रकाशयेत् ।
सा भवेदाश्विनी मुद्रा शक्तिबोधनकारिणी ॥ ११५ ॥

आश्विनीमुद्राके प्रभावसे सर्वविध रोग शान्तिको प्राप्त होते हैं और साधक वल और पुष्टिको प्राप्त करके अकाल मृत्युके हाथसे बच जाता है ॥ ११५-११६ ॥

पाशिनी मुद्रा ।

पादद्वय कण्ठकी ओरसे पीठकी ओर ले जाकर दृढरूपसे वन्धन करनेसे पाशिनी मुद्रा हुआ करती है; यह मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी है । इस परम श्रेष्ठ मुद्रा द्वारा वल और पुष्टिकी प्राप्ति होती है, इस कारण सिद्धि-अभिलाषी साधकगण यत्नपूर्वक इसका अभ्यास करें ॥ ११७-११८ ॥

काकी मुद्रा ।

मुख काकचञ्चुकी नाईं करके धीरे धीरे वायुपान करनेसे काकी-मुद्रा हुआ करता है, इसके साधनसे नाना प्रकारके रोगोंकी शान्ति होती है। यह श्रेष्ठ काकीमुद्रा सर्व-तन्त्रोंमें गोपनीय कही गई है, इसके द्वारा साधक काकवत् नीरोगी होजाता है ॥ ११९-१२० ॥

आश्विनी परमा मुद्रा सर्वरोगविनाशिनी ।
बलपुष्टिकरी चैव अकालमरणं हरेत् ॥ ११६ ॥

पाशिनीमुद्रा ।

कण्ठपृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवद्दृढबन्धनम् ।
सा एव पाशिनी मुद्रा शक्तिबोधनकारिणी ॥ ११७ ॥
एषा हि पाशिनी मुद्रा बलपुष्टिविधायिनी ।
साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ ११८ ॥

काकीमुद्रा ।

काकचञ्चुवदास्येन पिवेद्वायुं शनैः शनैः ।
काकी मुद्रा भवेदेषा सर्वरोगविनाशिनी ॥ ११९ ॥
काकीमुद्रा परा गोप्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
यस्याः प्रसादमात्रेण न रोगी काकवद्भवेत् ॥ १२० ॥

मातङ्गिनी मुद्रा ।

आकण्ठ जलमें अवस्थित रहकर प्रथममें नाकके द्वारा जल ग्रहण करके मुख द्वारा निकाल दिया जाय, पुनः मुख द्वारा जल ग्रहण करके नाक द्वारा वहिर्गत किया जाय, इस प्रकार वारम्वार करनेसे मातङ्गिनी मुद्रा हुआ करती है। इस मुद्राके साधनसे जरा और मृत्यु साधकको आक्रमण नहीं कर सके। निर्ज्जन स्थानमें अवस्थित रहकर एकाग्रचित्त हो मातङ्गिनीमुद्राका आचरण करने योग्य है। इस मुद्राके साधनसे साधक मातङ्गवत् बलशाली हो जाता है। योगी चाहे किसी स्थानमें अवस्थित रहे इस मुद्राके साधनसे उसको परम सुखकी प्राप्ति होती है इस कारण यत्न पूर्वक इसक आचरण करना उचित है ॥१२१-१२४॥

भुजङ्गिनी मुद्रा ।

मुखविवर किंचित् प्रसारित करके गल द्वारा वायुपान करनेसे भुजङ्गिनी मुद्रा हुआ करती है; इसके साधनसे जरा और मृत्युभय

मातङ्गिनीमुद्रा ।

कण्ठदघ्ने जले स्थित्वा नासाभ्यां जलमाहरेत् ।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्पुनर्वक्त्रेण चाऽऽहरेत् ॥ १२१ ॥
नासाभ्यां रेचयेत्पश्चात्कुर्यादेवं पुनः पुनः ।
मातङ्गिनी परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ १२२ ॥
विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः ।
कुर्वन्मातङ्गिनीं मुद्रां मातङ्ग इव जायते ॥ १२३ ॥
यत्र यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधयेन्मुद्रिकां पराम् ॥ १२४ ॥

भुजङ्गिनीमुद्रा ।

वक्त्रं किञ्चित्सुप्रसार्याऽनिलं कण्ठेन यः पिबेत् ।
सा भवेद्भुजगी मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ १२५ ॥

दूर होता है। इसके साधनसे सकल रोगोंका नाश होता है और योगसिद्धि होती है ॥ १२५-१२६ ॥

प्रत्याहार प्रकरण।

प्रत्याहार वर्णन ।

अब सर्वोत्तम प्रत्याहार योगका वर्णन किया जा रहा है जिसके अर्न्तगत होनेसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य, ये छः रिपु विनाशको प्राप्त हो जाते हैं। चित्त जहां जहां चञ्चल होकर भ्रमण करता है, प्रत्याहार क्रिया द्वारा मन वहींसे लौटकर आत्माके वश हो जाता है। जहां जहां दृष्टि जाती है वहां: वहां मन भी चला जाता है, प्रत्याहार क्रियासे वहींसे मन लौटकर आत्माके वशीभूत हो जाता है। पुरस्कार हो अथवा तिरस्कार मन सबमें ही लग जाता है; परन्तु मुद्राओंके साधनसे प्रत्याहारकी प्राप्ति होती है। शीत हो अथवा उष्ण

सर्वे रोगा विनश्यन्ति भुजंगीमुद्रया ध्रुवम् ।
योगसिद्धिप्रदा चेयं प्रोक्ता योगपरायणैः ॥ १२६ ॥

अथ प्रत्याहारप्रकरणम् ।

प्रत्याहारवर्णनम् ।

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम् ॥ १ ॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २ ॥
यत्र यत्र गता दृष्टिर्मनस्तत्र प्रगच्छति ।
ततः प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ३ ॥
पुरस्कारं तिरस्कारं मनः सर्वं वशं नयेत् ।
मुद्राणां साधनाच्चैव प्रत्याहारः प्रजायते ॥ ४ ॥

मन उनमें लग जाता है; परन्तु प्रत्याहारके साधनसे ही मन उनमेंसे हटकर आत्माके वशीभूत हो जाता है। सुगन्धि हो अथवा दुर्गन्धि उनमें अवश्य करके मन जाता है; परन्तु प्रत्याहारके साधनसे ही मन उनमेंसे हटकर आत्माके वशीभूत हो जाता है। मधुर हो, अम्ल हो, तिक्त हो, कषाय हो अथवा किसी प्रकारका रस हो मन उनमें चंचल होता है; परन्तु प्रत्याहारके साधनसे ही मन वहांसे हटकर आत्माके वशीभूत हो जाता है। योगीका मन जब प्रत्याहार भूमिमें ठहरनेके उपयोगी हो जाता है, उस समय मुद्रातत्त्वज्ञ गुरुदेव विभिन्न प्रकारके साधकको स्व स्व अधिकारके अनुसार प्रत्याहार साधनकी क्रियाओंका उपदेश देते हैं। उड्डीयानवन्ध जालन्धरवन्ध और मूलवन्ध इन तीनोंको एक साथ करनेसे योगी शीघ्र ही प्रत्याहार भूमिको लाभ कर सकते हैं। शाम्भवी मुद्रा प्रत्याहार प्राप्तिका साक्षात् कारण है। गुरुभक्त शिष्य अनायास ही प्रत्याहार साधनके इन सब रहस्योंको जान सकता है। केवली

शीतं वापि तथा चोष्णं यन्मनः स्पर्शयोगतः।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ५ ॥
सुगन्धे वाऽपि दुर्गन्धे घ्राणेषु जायते मनः।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ६ ॥
मधुराम्लकतिक्तादिरसं याति यदा मनः।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ७ ॥
षट्कर्मासनमुद्रासाधनतः सिद्धीः समासाद्य।
प्रत्याहारे तिष्ठति योगिवराणां मनो यदा सम्यक् ॥ ८ ॥
यथाऽधिकारं तानाशु प्रत्याहारक्रियां तदा।
गुरवो योगतत्त्वज्ञा भिन्नामुपदिशन्ति वै ॥ ९ ॥
जालन्धरश्चोड्डीयानो मूलवन्ध इति त्रयम्।
कुर्वाणो युगपद्योगी प्रत्याहार क्षमो भवेत् ॥ १० ॥
प्रत्याहारस्य लाभे हि शाम्भवी मुख्यकारणम्।
गुरुभक्तो ह्यनायासं रहस्यं ज्ञातुमर्हति ॥ ११ ॥

प्राणायाममें जिसने सफलता लाभ किया है, जो शाम्भवीमुद्रा-सेवी है ऐसे योगीके लिये प्रत्याहारसाधन अति सरल हो जाता है। प्रत्याहारकी सिद्धिसे साधक प्रकृतिजय करनेकी शक्ति प्राप्त करता है, प्रत्याहारकी सिद्धिमें मुद्रा ही परमसहायक है और प्राणयामके द्वारा प्रत्याहारकी दृढता होती है॥ १-१३॥

सिद्धिवर्णन ।

योगियोंको प्राप्त होनेवाली सिद्धियां चार प्रकारकी होती हैं, यथा-अध्यात्मसिद्धि, अधिदैवसिद्धि, अधिभूतसिद्धि और सहजसिद्धि। ये सब सिद्धियां ओषधि मन्त्र तप स्वरोदय और संयमशक्ति द्वारा प्राप्त होती हैं। सिद्धिके पूर्वोक्त चार भेद इस प्रकारसे हैं, यथा-भौतिक स्थूल पदार्थोंकी प्राप्ति आधिभौतिक कहाती है, दैवी शक्तियों-की प्राप्ति अधिदैवसिद्धि कहाती है, बुद्धि सम्बन्धी सिद्धि आध्या-त्मिक सिद्धि कहाती है। इस सिद्धिका अधिकार बहुत उन्नत है, वेद-

यो योगी शाम्भवीसेवी यो वा स्यात् कवलीक्षमः ।
प्रत्याहारस्तयोर्नूनं सुलभो नात्र संशयः ॥ १२ ॥
प्रत्याहारस्य सिद्ध्या वै प्रकृतिर्जीयते क्षणात् ।
तत्सिद्धौ सहकारं वै मुद्राः कुर्वन्ति नित्यशः ।
प्राणायामेन दृढता प्रत्याहारस्य जायते ॥ १३ ॥

सिद्धिवर्णनम् ।

चतुर्विधाः सिद्धयः स्युः प्राप्या या योगवित्तमैः ।
आध्यात्मिकी चाऽधिदैवी सहजा चाऽधिभौतिकी ॥ १४ ॥
मन्त्रौषधितपोभिश्च प्राप्यन्ते सिद्धयोऽखिलाः ।
स्वरोदयेनाऽपि तथा संयमेनेति निश्चयः ॥ १५ ॥
इत्थं चतुर्विधा भेदाः सिद्धेः प्रोक्ता मनीषिभिः ।
भौमस्थूलपदार्थानां सिद्धिः स्यादाऽऽधिभौतिकी ॥ १६ ॥
दैवशक्तिसमापत्तिर्यत्र सा चाऽऽधिदैविकी ।
आध्यात्मिकी च विज्ञेयाः प्रज्ञासम्बद्धसिद्धयः ॥ १७ ॥
उन्नतश्चाऽधिकारोऽस्याः परमः प्रोच्यते बुधैः ।

का आविर्भाव इसी अवस्थामें होता है और जीवन्मुक्तकी सिद्धि सहज कहाती है। योगतत्त्ववेत्ताओंने सिद्धियोंके और भी कई एक भेद किये हैं, यथा-प्रतिभा, श्रवणा, वेदना, दर्शना, आस्वादा और वार्ता। वेद्य वस्तुका ज्ञान विचार द्वारा जिससे हो उसे बुद्धि कहते हैं; परन्तु प्रतिभा उस बुद्धिको कहते हैं कि जिसके द्वारा विना विवेचना किये भी दर्शन मात्रसे वेद्य वस्तुका ज्ञान हो जाय। सूक्ष्म, व्यवहित, अतीत, विप्रकृष्ट और भविष्यद्वस्तुका ज्ञान प्रतिभासे होता है। जिस अवस्थामें ह्रस्व दीर्घ प्लुत गुप्त आदि शब्दोंका श्रवण योगीको विना प्रयत्नसे होने लगे उस सिद्धिका नाम श्रवणा है। सकल वस्तुओंके प्रत्यक्षको वेदना कहते हैं। अनायास जब दिव्यरूपोंका दर्शन होने लगे उस अवस्थाका नाम दर्शना है। विना प्रयत्नके जब दिव्यरसोंका आस्वादन होने लगे उसे आस्वादा कहते हैं और जब अलौकिक गन्धोंका प्रत्यक्ष योगीको हो उसको

आविर्भावो हि वेदानां जायते यत्र निश्चितम् ॥ १८ ॥
सहजाः सिद्धयः प्रोक्ता जीवन्मुक्तस्य सिद्धयः।
सिद्धेर्हि बहवो भेदा विनिर्दिष्टा महर्षिभिः ॥ १९ ॥
प्रतिभा प्रथमा सिद्धिर्द्वितीया श्रवणा स्मृता।
तृतीया वेदना चैव तुरीया चेह दर्शना।
आस्वादा पञ्चमी प्रोक्ता वार्त्ता वै षष्ठिका स्मृता ॥ २० ॥
बुद्धिर्विवेचना वेद्यं बुध्यते बुद्धिरुच्यते।
प्रतिभा प्रतिभा वृत्तिः प्रतिभात्र इति स्थितिः ॥ २१ ॥
सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते।
सर्वत्र सर्वदा ज्ञानं प्रतिभानुक्रमेण तु ॥ २२ ॥
श्रवणा सर्वशब्दानामप्रयत्नेन योगिनः।
ह्रस्वदीर्घप्लुतादीनां गुह्यानां श्रवणादपि ॥ २३ ॥
स्पर्शस्याऽधिगमो यस्तु वेदना तूपपादिता।
दर्शना दिव्यरूपाणां दर्शनं चाऽप्रयत्नतः ॥ २४ ॥
संविद्दिव्यरसे तस्मिन्नाऽऽस्वादो ह्यप्रयत्नतः।

वार्त्ता कहते हैं, इस अवस्थामें योगीको सकल ब्रह्माण्डका ज्ञान हो जाता है ॥ १४-२५ ॥ संयमके द्वारा समाधि विषयक बुद्धिका प्रकाश होता है, संयम ही मुख्य है। संयम शक्तिकी वृद्धि द्वारा योगी जो चाहे सो कर सकता है। कहां कहां संयम करनेसे क्या क्या सिद्धि प्राप्त होती है सो योगिराज श्रीगुरुदेवसे जानने योग्य है। संयम शक्ति समाधि भूमिमें प्राप्त होती है; परन्तु अन्य शक्तियां पहलेकी भूमियोंमें भी प्राप्त हो सकी हैं, हठयोगियोंमें तपःशक्तिकी प्रधानता है सो प्रत्याहार भूमिमें ही प्राप्त हो सकती है। सिद्धियां परम सुखकर होनेपर भी सर्वथा निन्दनीय और हेय हैं। आत्मोन्नतिका इच्छुक योगी वैराग्यकी सहायतासे उनसे विमोहित न हो ऐसा ही योगानुशासन है। हठयोगकी सिद्धिमें एक विशेषता यह है कि उससे सब प्रकारके रोगोंकी शान्ति होती है। योगियोंको जो कुछ

वार्त्ता च दिव्यगन्धानां तन्मात्रा बुद्धिसंविदा ।
विन्दन्ते योगिनस्तस्मादाब्रह्मभुवनं ध्रुवम् ॥ २५ ॥
समाधिबुद्धिः प्राकाश्यं येन याति निरन्तरम् ।
स संयमो मुख्यतमः प्रोच्यते कृतबुद्धिभिः ॥ २६ ॥
यदृच्छाचारिताप्राप्तिः संयमस्य विवृद्धितः ।
कुत्र संयमतः सिद्धिः प्राप्यते का हि योगिभिः ॥ २७ ॥
विज्ञेयमेतद्गुरुभिर्योगमार्गविशारदैः ।
संयमः प्राप्यते धीरैः समाधावेव केवलम् ॥ २८ ॥
शक्तयोऽन्याः प्रपद्यन्ते पूर्वभूमौ मनीषिभिः ।
हठयोगिषु मुख्या स्यात्तपःशक्तिश्च साऽऽप्यते ॥ २९ ॥
प्रत्याहारे शुभकराः सिद्धयो हि सुखावहाः ।
तथाऽपि सर्वथा हेया आत्मप्राप्तिमभीप्सुभिः ॥ ३० ॥
न ताभिर्मोह आप्येत स्वात्मोन्नतिनिरीक्षकाः ।
योगाऽनुशासनं चैतद्वैराग्यसहकारतः ॥ ३१ ॥
सिद्धिर्हि हठयोगस्य सर्वरोगविनाशिका ।

रोग हो सो योगतत्त्वज्ञ महात्माओंके उपदेश द्वारा शान्त हो सक्ता है, रोगोंकी शान्ति करनेमें तेंतीस आसन, पचीस मुद्रा और अष्ट प्रकारके प्राणायाम परम सहायक हैं। संयमक्रिया सर्वोपरि है, आसन मुद्रा और प्राणायामकी भिन्न भिन्न क्रियाओंमें भिन्नभिन्न रोग-मुक्तिकारी योगसिद्धिकर शक्तियां निहित हैं ॥१४-३५॥

प्राणायाम प्रकरण ।

प्राणायाम वर्णन ।

प्राण ही महाशक्ति है, प्राण ही जगत् रक्षक है, प्राणके जय करनेसे सब कुछ जय होसक्ता है। स्थूल और सूक्ष्म भेदसे प्राणके दो भेद हैं। प्राणजय करनेवाली क्रियाको प्राणायाम कहते हैं। प्राण-जयकी क्रिया त्रिभेदमें विभक्त है। मन्त्रयोगमें प्राणजयकी क्रिया

रोगा वै योगिनां योगतत्त्वज्ञस्योपदेशतः ॥ ३२ ॥
उपशाम्यन्ति निखिलाश्चेति प्रोचुर्महर्षयः ।
आसनानि त्रयस्त्रिंशन्मुद्रा वै पञ्चविंशतिः ॥ ३३ ॥
प्राणायामास्तथा चाष्टौ रोगशान्तिसहायकाः ।
मुख्यस्तु संयमः प्रोक्तो मुद्रायामासने तथा ॥ ३४ ॥
प्राणायामे विभिन्ना हि शक्तयो निहिताः शुभाः ।
रोगा याभिर्विनश्यन्ति योगसिद्धिश्च जायते ॥ ३५ ॥

अथ प्राणायामप्रकरणम् ।

प्राणायामवर्णनम् ।

प्रधानशक्तयः प्राणास्ते वै संसाररक्षकाः ।
वशीकृतेषु प्राणेषु जीयते सर्वमेव हि ॥ १ ॥
प्राणास्तु द्विविधा ज्ञेयाः स्थूलसूक्ष्मप्रभेदतः ।
यया जयः स्यात्प्राणानां प्राणायामः स चोच्यते ॥ २ ॥
मन्त्रे स्याद्धारणा मुख्या त्रिभेदास्तु जयक्रियाः ।

धारणा प्रधान है, हठयोगमें वायु प्रधान है और लय योगमें सूक्ष्म क्रियाका साधन होता है वह मनःप्रधान है। वायुप्रधान प्राणायामक्रिया सर्वहितकर है। अब प्राणायामका वर्णन किया जारहा है, प्राणायामसाधनसे साधक देवताके समान हो जाता है। प्राणायाम साधन करनेके लिये चार बातोंकी आवश्यकता है; प्रथम उपयुक्तस्थान, द्वितीय नियमित समय, तृतीय मिताहारकोअभ्यास और चतुर्थ नाड़ीशुद्धि ॥ १-६ ॥

प्राणायाम भेद।

प्राणायामके आठ भेद हैं, यथा-सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली ॥ ७ ॥

सहित प्राणायाम।

सहित प्राणायाम दो प्रकारका होता है, यथा–सगर्भ और निगर्भ। जो प्राणायाम वीजमन्त्रसहित किया जाय उसको सगर्भ और जो बीजमन्त्ररहित हो उसे निगर्भ प्राणायाम कहते हैं। सगर्भ

हठे वायुप्रधाना वै प्रोक्ता प्राणजयक्रिया ॥ ३ ॥
मनःप्रधाना भवति साध्या सूक्ष्मक्रिया लये।
सा च वायुप्रधाना हि सर्वश्रेयस्करी मता ॥ ४ ॥
अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य तद्विधिम्।
यस्य साधनमात्रेण देवतुल्यो भवेन्नरः ॥ ५ ॥
आदौ स्थानं तथा कालं मिताऽहारं ततः परम्।
नाड़ीशुद्धिं ततः पश्चात्प्राणायामे च साधयेत् ॥ ६ ॥

प्राणायामभेदाः।

सहितः सूर्यभेदीच उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाऽष्टकुम्भकाः ॥ ७ ॥

सहितप्राणायामः।

सहितो द्विविधः प्रोक्तः सगर्भश्च निगर्भकः।
सगर्भो बीजसहितो निगर्भो बीजवर्जितः ॥ ८ ॥

प्राणायाम जिस प्रकारसे किया जाता है वह मैं प्रथम कहता हूँ, पूर्व-दिशा अथवा उत्तरदिशाकी ओर मुख करके सुखदेनेवाले आसनपर बैठकर ब्रह्माका ध्यान करे, वह ब्रह्मा रक्तवर्ण "अ" कार रूपी और रजोगुणविशिष्ट हैं। तत्पश्चात् "अं" इस वीज मन्त्रको षोडशवार जप द्वारा वाम नासिकासे वायु पूरक करे, कुम्भक करनेके पहिले और वायु पूरण करनेके पश्चात् उड्डीयान वन्धका आचरण करना उचित है। तदनन्तर सत्वगुणयुक्त "उ" काररूपी कृष्णवर्ण हरिके ध्यानपूर्वक "उं" बीजको चतुःषष्टिवार जपपूर्वक कुम्भक द्वारा वायुको धारण करना उचित है। तत्-पश्चात् तमोगुण "म" काररूपी श्वेतवर्ण शिवके ध्यानपूर्वक "मं" वीजको द्वात्रिंशत् वार जप करते हुए दक्षिणनासिका द्वारा वायु रेचन कर दिया जाय। पुनः ऊपर लिखी हुई रीतिपर वीजमन्त्र जप द्वारा यथा संख्या और क्रमसे दक्षिण नासिका द्वारा वायु पूरक करके कुम्भक करते हुए वामनासिका द्वारा वायु रेचन कर दिया जाय। इस प्रकार तीन आवृत्तिमें एक प्राणायाम होता है, इस

प्राणायामं सगर्भञ्च प्रथमं कथयामि ते।
सुखाऽऽसने चोपविश्य प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः॥ ९॥
ध्यायेद्विधिं रजोरूपं रक्तवर्णमवर्णकम्।
इडया पूरयेद्वायुं मात्राषोडशकैः सुधीः॥ १०॥
पूरकान्ते कुम्भकाद्य उड्डीयानं समाचरेत्।
हरिं सत्त्वमयं ध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम्॥ ११॥
चतुःषष्ठ्या मात्रया वै कुम्भकेनैव धारयेत्।
तमोमयं शिवं ध्यात्वा मकारं शुक्लवर्णकम्॥ १२॥
द्वात्रिंशन्मात्रया चैव रेचयेद्विधिना पुनः।
पुनः पिङ्गलयापूर्य कुम्भकेनैव धारयेत्॥ १३॥
इडया रेचयेत्पश्चात्तद्वीजेन क्रमेण तु।

रीतिपर अनुलोम विलोम द्वारा पुनः पुनः प्राणायाम अनुष्ठान करने योग्य है। वायु पूरकके अन्तमें कुम्भक शेष पर्यन्त तर्ज्जनी मध्यमा-के विना कनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ इन तीन अंगुलियोंके द्वारा नासापुटद्वय धारण किया जाय अर्थात् कुम्भक करते समय वाम-नासामें कनिष्ठा अंगुलि और अनामिका अंगुलि देकर दक्षिण नासिका-में केवल वृद्ध अंगुष्ठ लगाकर धारण किया जाय। साधारण सहित प्राणायाम केवल व्याहृति सहित गायत्री मन्त्र द्वारा रेचक पूरक कुम्भक करनेपर भी हो सकता है। कर्मकाण्डमें इसका विधान है। ध्यानके विना भी पूर्व कथित संख्याके अनुसार केवल प्रणव अथवा केवल वीजमन्त्रकी सहायतासे जो सहित प्राणायाम किया जाता है वह भी आरुरुक्षु योगीके लिये कल्याणप्रद है। जो प्राणायाम वीजमन्त्र न जपकर साधन किया जाय उसीको निगर्भ प्राणायाम कहते हैं। पूरक कुम्भक और रेचक इन तीन अंगसमन्वित सहित प्राणायाम साधन करनेकी विधिका क्रम एक संख्यासे लेकर शत संख्यातक है। मात्राके अनुसार प्राणायामके तीन भेद हैं, यथा-विंशति मात्रा साधन, षोडशमात्रा साधन और द्वादश मात्रा साधन। विंशति

अनुलोमविलोमेन वारं वारं च साधयेत्॥ १४॥
पूरकान्ते कुम्भकान्ते धृतनासापुटद्वयम्।
कनिष्ठाऽनामिकाऽङ्गुष्ठैस्तर्जनीमध्यमे विना॥ १५॥
प्राणायामो हि सहितो गायत्र्यापि सुसिध्यति।
कर्मकाण्डे विधेयोऽसौ नान्यत्र क्वचिदिष्यते॥ १६॥
केवलैर्बीजमन्त्रैर्वा केवलप्रणवेन वा।
आरुरुक्षोर्योगिनो हि कृतोऽयं शिवदो भवेत्॥ १७॥
प्राणायामो निगर्भस्तु विना वीजेन जायते।
एकादिशतपर्यन्तं पूरकुम्भकरेचनम्॥ १८॥
उत्तमा विंशतिर्मात्रा मध्या षोडशमात्रिका।

मात्रा साधन उत्तम, षोडश मात्रा मध्यम और द्वादश मात्रा अधम है। अधममात्रा प्राणायामकी सिद्धिसे शरीरसे स्वेद निर्गत होता है, मध्यममात्रा प्राणायाम साधन करनेसे मेरुदण्ड कम्पित होने लगता है अर्थात् गुह्यद्वारसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक एक नाड़ी कांपती हुई अनुभव होती है और उत्तममात्रा प्राणायामके साधनसे साधक भूमि त्यागकरके शून्यमार्गमें उत्थित हो सक्ता है। स्वेदनिर्गम, मेरु कम्पन और भूमित्याग, ये तीनों प्राणायाम सिद्धिके चिह्न हैं। इस प्राणायामके साधनसे खेचरत्व शक्तिकी प्राप्ति होती है, सब प्रकारके रोगोंका नाश होता है, परमात्मशक्तिका प्रबोध होता है और दिव्य-ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है; जो मनुष्य प्राणायाम साधन करते हैं उनके चित्तमें परमानन्दकी प्राप्तिसे वे परम सुखी होजाते हैं॥१८-२१॥

सूर्यभेदी प्राणायाम।

सहित प्राणायाम कहा गया अब सूर्यभेदी प्राणायाम कहा जाता है। सर्वाग्रे जालन्धरबन्ध मुद्राका अनुष्ठान करके दक्षिणनासिका द्वारा वायु पूरक करते हुए यत्नपूर्व कुम्भक द्वारा वायुको धारण

अधमा द्वादशी मात्रा प्राणायामास्त्रिधा स्मृताः ॥ १९ ॥
अधमाज्जायते स्वेदो मेरुकम्पश्च मध्यमात् ।
उत्तमाच्च क्षितित्यागस्त्रिविधं सिद्धिलक्षणम् ॥ २० ॥
प्राणायामात्खेचरत्वं प्राणायामाद्रुजाक्षयः ।
प्राणायामाच्छक्तिबोधः प्राणायामान्मनोन्मनी ।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत् ॥ २१ ॥

सूर्यभेदीप्राणायामः ।

कथितः सहितः कुम्भः सूर्यभेदनकं शृणु ।
पूरयेत्सूर्यनाड्या च यथाशक्त्यानिलं बहिः ॥ २२ ॥
धारयेद्बहुयत्नेन कुम्भकेन जलन्धरैः ।

करके रहे और जबतक नख और केश द्वारा स्वेद निर्गत न हो तबतक कुम्भक ही किया जाय । प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पञ्च वायु अन्तरस्थ और नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय, ये पांच वायु बहिःस्थ हैं । प्राण हृदय देशमें, अपान गुह्यमें, समान नाभिमें, उदान कण्ठमें और व्यान वायु समस्त शरीरमें व्याप्त हो रहा है। ये पांच वायु अन्तरके हैं और नाग आदि पांच वायु बाहिरके हैं। अब इन पांचोंका भी वर्णन किया जा रहा है, नाग वायु उद्गारमें, कूर्म वायु उन्मीलनमें, कृकर वायु क्षुत्कारमें, देवदत्त वायु जृम्भणमें और धनंजय वायु देह त्याग होनेपर भी शरीरमें स्थित रहता है। नाग वायु चैतन्य प्राप्त करता है, कूर्म वायु निमेषण करता है, कृकर वायु क्षुधा और तृषा बढाता है, देवदत्त वायु जृम्भण कार्य करता है और धनञ्जय वायु द्वारा शब्दकी उत्पत्ति हुआ करती है और यह कदापि देहको त्याग नहीं करता । सूर्यभेदी कुम्भक करते समय इन उल्लिखित

यावत्स्विन्नाः केशनखास्तावत्कुर्वन्तु कुम्भकम् ॥ २३ ॥
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ २४ ॥
हृदि प्राणो वहेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ॥ २५ ॥
व्यानो व्याप्य शरीरं तु प्रधानाः पञ्च वायवः ।
प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ॥ २६ ॥
तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्मस्तून्मीलने स्मृतः ॥ २७ ॥
कृकरः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।
न जहाति मृते क्वाऽपि सर्वव्यापी धनञ्जयः ॥ २८ ॥
नागो गृह्णाति चैतन्यं कूर्मश्चैव निमेषणम् ।
क्षुत्तृषं कृकरश्चैव चतुर्थे च विजृम्भणम् ।
भवेद्धनञ्जयाच्छब्दः क्षणमात्रं न निःसरेत् ॥ २९ ॥

प्राणादि वायुसमूहको पिङ्गला नाडी द्वारा विभिन्न करके मूल देश-से समान वायु उठाया जाय, तदनन्तर धैर्यपूर्वक वेगसे वाम नासिका द्वारा रेचन कर दिया जाय। पुनरपि दक्षिण नासापुट द्वारा वायु पूरण करके सुषुम्नामें कुम्भक करके वाम नासापुट द्वारा रेचन कर दिया जाय। इसी प्रकार पुनः पुनः करनेसे सूर्यभेदी कुम्भक हुआ करता है। यह प्राणायाम जरा और मृत्युका नाश करनेवाला है, इसके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति प्रबोधित होती है और देहस्थ अग्नि-की विवृद्धि हो जाती है; यही अति उत्तम सूर्य भेदी नामक प्राणायाम का वर्णन है। २२-३२ ॥

उज्जायी प्राणायाम।

बहिःस्थित वायु नासिका द्वारा आकर्षण करके और अन्तःस्थ वायुको हृदय और गलदेश द्वारा आकर्षण करके मुखमें कुम्भक द्वारा धारण किया जाय, तदनन्तर मुख प्रक्षालन पूर्वक जालन्धर मुद्राका अनुष्ठान किया जाता है, इस प्रकार निज शक्ति अनुसार वायुको धारण करनेसे उज्जायी प्राणायामका साधन हुआ करता है। इसके

सर्वे ते सूर्यसम्भिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाऽखण्डवेगतः ॥ ३० ॥
पुनः सूर्येण चाऽकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
कुम्भकः सूर्यभेदी तु जरामृत्युविनाशकः ।
बोधयेत्कुण्डलीं शक्तिं देहवह्निं विवर्धयेत् ।
इति ते कथितं सौम्य ! सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

उज्जायीप्राणायामः ।

नासाभ्यां वायुमाकृष्य मुखमध्ये च धारयेत् ।
हृद्गलाभ्यां समाकृष्य वायुं वक्त्रे च धारयेत् ॥ ३३ ॥
मुखं प्रक्षाल्य सम्बध्य कुर्याज्जालन्धरं ततः ।
आशक्ति कुम्भकं कृत्वा धारयेदविरोधतः ॥ ३४ ॥

साधनसे नाना प्रकारके कर्मोंकी सिद्धि होती है और जो मनुष्य जरा और मृत्युसे बचनेकी इच्छा करते हों वे अवश्य इस प्राणायामका साधन करें और इसके साधनसे निश्चय करके सम्पूर्ण रोगोंका नाश होता है ॥ ३३-३५ ॥

शीतली प्राणायाम।

जिह्वा द्वारा (काकचञ्चु रूपसे) वायु आकर्षण पूर्वक धीरे धीरे उदरको परिपूरित करके तत्पश्चात् थोडी देर धारण पूर्वक नासिका द्वारा रेचन कर देनेसे शीतली प्राणायाम हुआ करता है। साधकों-को सर्वदा कल्याणप्रद इस शीतली कुम्भकका अनुष्ठान करना उचित है, इसके साधनसे सकल रोगोंका नाश होता है और योगकी सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्राणायामके द्वारा क्षुधा तृष्णा तथा कामादिकी अग्नि शान्त होती है इसलिये इसको शीतली कहते हैं। यह सकल प्रकार श्वासरोग तथा हृद्रोगकी महौषधि और समाधिका सहायक है ॥३६-३८॥

उज्जायी कुम्भकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत्।
जरामृत्युविनाशाय चोज्जायीं साधयेन्नरः।
नश्यन्ति सकला रोगाः साधनादस्य निश्चितम् ॥३५॥

शीतलीप्राणायामः।

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः।
क्षणं च कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥ ३६ ॥
सर्वदा साधयेद्योगी शीतलीकुम्भकं चरेत्।
सर्वे रोगा विनश्यन्ति योगसिद्धिश्च जायते ॥ ३७ ॥
क्षुत्कामाद्यग्निनिर्वाणात् शीतलीति प्रकीर्त्यते।
श्वासहृद्रोगभिदयं समाधिसाधको भवेत् ॥ ३८ ॥

भस्त्रिका प्राणायाम ।

लुहारोंके भस्त्रिका यन्त्र द्वारा जिस प्रकार वायु आकृष्ट किया जाता है उसी प्रकार नासिका द्वारा वायु समाकर्षण पूर्वक शनैः शनैः उदरमें वायु भरकर उदरको परिचालित करे। इस प्रकारसे विंशतिवार वायुको परिचालित करके कुम्भक द्वारा वायु धारण करते हुए पुनः भस्त्रिका यन्त्र द्वारा जिस प्रकार वायु निर्गत होता है उसी प्रकार नासिका द्वारा वायु निकाल देनेसे भस्त्रिका प्राणायाम हुआ करता है। यह कुम्भक यथानियमसे तीनवार आचरण करनेके योग्य है। इसके साधन द्वारा किसी प्रकारकी व्याधि अथवा क्लेश साधकके शरीरमें नहीं हो सक्ता और दिन दिन आरोग्यता बढ़ती जाती है। भस्त्रिका प्राणायामकी संख्या तथा मनकी धारणाके तारतम्यानुसार सकल रोगोंका मूलोच्छेद हो जाता है ॥३९-४२॥

भ्रामरी प्राणायाम ।

रात्रिका अर्द्ध अंश व्यतीत होनेपर जिस स्थानपर किसी जीव

भस्त्रिकाप्राणायामः ।

भस्त्रेव लोहकाराणां संभ्रमेत् क्रमशो यथा ।
तथा वायुं च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः ॥ ३९ ॥
एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम् ।
तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि ॥ ४० ॥
त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिकाकुम्भकं सुधीः ।
न च रोगा न च क्लेश आरोग्यं च दिने दिने ॥ ४१ ॥
भस्त्रिका प्राणायामस्य स्फुटं संख्यानुसारतः ।
मनसो धारणायाश्च तारतम्यानुसारतः ।
व्याधीनामिह सर्वेषां मूलमुच्छिद्यते खलु ॥ ४२ ॥

भ्रामरीप्राणायामः ।

अर्धरात्रे गते योगी जन्तूनां शब्दवर्जिते ।

जन्तुका भी शब्द सुनाई न दे उस स्थानपर गमनपूर्वक योगी अपने हस्त द्वारा अपने कर्ण युगलको बन्द करके पूरक और कुम्भकका अनुष्ठान करे। इस प्रकार कुम्भक साधन करनेसे साधकके दक्षिण कर्णमें नाना प्रकारके शब्द सुनाई देंगे। वे शब्द देहके अभ्यन्तरही उदित हुआ करते हैं। प्रथम झिल्लीरव, तदनन्तर वंशीरव, तदनन्तर मेघध्वनि, तदनन्तर झर्झरी नामक वाद्यध्वनि और तत्पश्चात् भ्रमरके "गुन गुन" शब्दके नांई सुनाई देगा; तत्पश्चात् घंटा, कांस्य, तुरी, भेरी, मृदङ्ग, आनक दुन्दुभि आदि शब्द श्रुति गोचर होंगे। इस प्रकार प्रतिदिन नाना प्रकारकी ध्वनि सुननेमें आया करेगी और पीछेसे अनहद शब्दकी प्रतिध्वनि सुनाई दिया करती है। तत्पश्चात् साधक ध्वनिके अन्तर्गत परज्योति और ज्योतिके अन्तर्गत परब्रह्ममें मन लय करता हुआ विष्णुके परम पदमें लय प्राप्त हो जाता है। इस प्रकारसे भ्रामरी कुम्भककी सिद्धि हुआ करती है। इस प्राणायामके साधनसे समाधिकी प्राप्ति हो जाती है ॥४३-४७॥

मूर्च्छा प्राणायाम।

प्रथममें सुखसे पूर्व कथित रीतिपर कुम्भकका अनुष्ठान करके

कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कूर्यात्पूरककूम्भकम् ॥ ४३ ॥
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम्।
प्रथमे झिंझिनादश्च वंशीनादं ततः परम् ॥ ४४ ॥
मेघझर्झरभ्रङ्गीघघण्टाकांस्यं ततः परम्।
तुरीभेरीमृदङ्गादिनिनादानकदुन्दुभिः।
एवं नानाविधो नादः श्रूयतेऽभ्यसनाद्ध्रुवम् ॥ ४५ ॥
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिषोऽन्तर्गतं मनः ॥ ४६ ॥
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्।
भ्रामरीसिद्धिमापन्नः समाधेः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥

मूर्च्छाप्राणायामः।

सुखेन कुम्भकं कृत्वा मनो भ्रूयुगलान्तरम्।

सब प्रकारके विषयोंसे मनको हटाकर, तत्पश्चात् भ्रूयुगलके बीचमें मनको लगाते हुए मनकी लयावस्था उत्पन्न करे तो मूर्च्छा कुम्भकका साधन हुआ करता है; इस कुम्भक द्वारा परमानन्दकी प्राप्ति हुआ करती है। इस प्रकार दिन प्रति दिन इस प्राणायामके अभ्याससे नानाप्रकारका आनन्द प्राप्त होते होते अवशेषमें समाधिकी सिद्धि हो जाती है। इस प्राणायामके द्वारा स्वतःही प्रत्याहारमें सिद्धिलाभ होता है। वासनाक्षय और तत्त्वज्ञानका मूल मनोनाश है। इस प्राणायामके द्वारा मनोनाश सहज साध्य हो जाता है। सकल प्रकार आधि व्याधिके तत्काल दूर करनेके लिये यह प्राणायाम महौषधिस्वरूप है ॥४८-५१॥

केवली प्राणायाम।

भुजङ्गिनीके श्वाससे अर्थात् कुण्डलिनी शक्तिके प्रभावसे जीव सदा अजपा जप करता है, जिसमें श्वास निकलते समय "हं" और जाते समय "सः" मन्त्र उच्चारण होकर अजपाजप होता है। "हंस"

सन्त्यज्य विषयान्सर्वान्मनामूर्च्छा सुखप्रदा ॥ ४८ ॥
आत्मना मनसो योगादानन्दो जायते ध्रुवम्।
एवं नानाविधाऽऽनन्दो जायतेऽभ्यासतः स्फुटम्।
एवमभ्यासयोगेन समाधेः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥
मूर्च्छाप्राणायामतोऽस्मात् प्रत्याहारः सुसिध्यति।
वासनायाः क्षयस्तत्त्वज्ञानकार्य मनोलयः ॥ ५० ॥
अनेन प्राणायामेन मनोनाशो भवत्यलम्।
सर्वाधिव्याधिविलये महौषधमयं ध्रुवम् ॥ ५१ ॥

केवलीप्राणायामः।

भुजङ्गिन्याः श्वासवशादजपा जायते ननु।
हङ्कारेण बहिर्याति सःकारेण विशेत्पुनः ॥ ५२ ॥

अर्थात् "सोहं" रूप प्रकृतिपुरुषसंयुक्त गायत्री जप जीव दिवा रात्रि करता रहता है। उसकी संख्या एक विंशति सहस्र एवं षट् शत (२१६००) है। मूलाधारपद्म, हृदयपद्म और नासापुट द्वय, इन तीनों स्थानों द्वारा यह जप हुआ करता है। इस श्वासवायुके बाहर निकलनेका परिमाण षण्णवति अङ्गुली है और इसकी स्वाभाविक वहिर्गति द्वादश अङ्गुली, गायनमें इसका परिमाण षोडश अङ्गुली, भोजनमें विंशति अङ्गुली, पथपर्यटनमें चतुर्विंशति अङ्गुली, निद्रामें त्रिंशत् अङ्गुली, मैथुनमें षट्त्रिंशत् अङ्गुली और व्यायाममें उससे भी अधिक हुआ करता है। वायुकी स्वाभाविक गति द्वादश अङ्गुली है यह पूर्व ही कहा गया है; इस द्वादश अङ्गुली परिमाणसे वायुकी गति जितनी न्यून होती है उतनी ही परमायुकी वृद्धि हुआ करती है परन्तु इस परिमाणसे अधिक बढ जानेसे परमायु क्षय हुआ करता है। जबतक देह अन्तर्गत प्राणवायु अवस्थित है, तबतक जीवकी मृत्यु होनेकी सम्भावना नहीं, कुम्भक साधनमें प्राण वायु

षट् शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिम् ।
अजपां नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा ॥ ९३ ॥
मूलाऽऽधारे यथा हंसस्तथा हि हृदि पङ्कजे ।
तथा नासापुटद्वन्द्वे त्रिभिर्हंससमागमः ॥ ९४ ॥
षण्णवत्यङ्गुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम् ।
देहाद्बहिर्गतो वायुः स्वभावाद्द्वादशाङ्गुलिः ॥ ९५ ॥
गायने षोडशाङ्गुल्यो भोजने विंशतिस्तथा ।
चतुर्विंशाङ्गुलिः पान्थे निद्रायां त्रिंशदङ्गुलिः ॥ ९६ ॥
मैथुने षट्त्रिंशदुक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम् ।
स्वभावेऽस्य गते न्यूने परमायुः प्रवर्धते ॥ ९७ ॥
आयुःक्षयोऽधिके प्रोक्तो मारुते चाऽन्तराद्गते ।
तस्मात्प्राणे स्थिते देहे मरणं नैव जायते ॥ ९८ ॥

ही मूलभूत कारण है। जीव देह धारण करके जबतक जीवित रहता है तबतक वह यथाविहित परिमित संख्याके अनुसार अजपाजप करता रहता है; देहके बीचमें प्राण वायुका धारण करना ही केवली कुम्भक कहाता है; केवली कुम्भकसाधन जितना अधिक होता है उतनी ही मनकी लयावस्था हुआ करती है। नासापुट द्वारा वायु आकर्षण पूर्वक केवली कुम्भक किया जाता है। केवलीकी क्रिया सहज कहाती है क्योंकि उसमें रेचक पूरकका कोई क्रम नहीं है और न कुम्भककी कठिनता है। प्राणपर कुछ आधिपत्य हो जानेसे श्री गुरूपदेश द्वारा इसकी क्रिया प्राप्त होती है। प्रथम अवस्थामें प्राण वायुको नियमित करके प्राणकी क्रिया संयमित करनी पड़ती है और इसकी उन्नत अवस्थामें स्वतः ही इसका साधन हुआ करता है। इन्द्रियोंके विषयोंसे मनको हटाकर भ्रूयुगलके बीचमें मनको स्थापित करते हुए अपान और प्राण दोनोंकी गति रुद्ध कर-

---

वायुना घटसम्बन्धे भवेत्केवलकुम्भकम् ।
यावज्जीवं जपेन्मन्त्रमजपासंख्यं यथाविधि ॥ ५९ ॥
अद्यावधि धृतं संख्याविभ्रमं केवली कृते ।
अत एव हि कर्तव्यः केवली कुम्भको नरैः ॥ ६० ॥
केवली चाऽजपा सङ्ख्या द्विगुणा च मनोन्मनी ।
नासाभ्यां वायुमाकृष्य केवलं कुम्भकं चरेत् ॥ ६१ ॥
कुम्भकस्य न काठिन्यमक्रमा पूररेचकौ ।
विद्यते यत्र सा ज्ञेया सुसाध्या केवली क्रिया ॥ ६२ ॥
वशीभवत्सु प्राणेषु गुरूणामुपदेशतः ।
अवाप्यन्ते क्रियाः सर्वा नियम्याः प्राणवायवः ॥ ६३ ॥
आदौ प्राणक्रिया तस्मात्संयम्या भवति ध्रुवम् ।
अस्याः समुन्नताऽवस्थां प्राप्य सा साध्यते स्वतः ॥ ६४ ॥
मनोऽपनीय विषयाद्भ्रूमध्ये तन्निवेशयेत् ।

नेके उपायसे केवली प्राणायामकी क्रिया होती है। केवली प्राणायाम समाधिप्रद है और त्रिविध तापनाशक है। इस प्राणायमकी सिद्धिमें योगीको कुछ भी अभाव नहीं रहता। केवली कुम्भकके द्वारा कुलकुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् होकर सहस्रारमें ब्रह्मसायुज्यको लाभ करती है इसलिये इस प्राणायाममें षट् चक्र भेदकी क्रियाएं भी करनी होती हैं। प्रथमतः रेचक पूरकका अनायाससाध्य कौशल अवलम्बन करनेपर अन्तमें वह सहजदशामें परिणत हो जाता है। खेचरीमुद्राके साथ इस प्राणायामके करने पर विशेष लाभ होता है। केवली प्राणायाम सकल प्रकार आधिव्याधिका नाशक तथा आत्मज्ञान प्रदायक है॥ ५२-७०॥

प्राणाऽपाननिरोधेन जायते केवलीक्रिया॥ ६५॥
समाधिदश्च त्रिविधांस्तापान्नाशयति ध्रुवम्।
सिद्धेऽस्मिन्योगयुक्तानामप्राप्यं नैव किञ्चन॥ ६६॥
केवली कुम्भकेनेयं शक्तिः कुण्डलिनी ध्रुवम्।
प्रबुद्धा हि सहस्रारे ब्रह्मसायुज्यमेति यत्।
षट्चक्रभेदने तस्मादेतत् साधनमिष्यते॥ ६७॥
रेचकस्य पूरकस्य कौशले सुखमाश्रिते।
सहजायां दशायां स्यादयं परिणतः ध्रुवम्॥ ६८॥
खेचरीमुद्रया सार्द्धं प्राणायामे कृते पुनः।
अस्मिन्नुत्पद्यते लाभो विशिष्टो नात्र संशयः॥ ६९॥
प्राणायामो नूनमयमाधिव्याधिविमर्दकः।
आत्मज्ञानोत्पादने च परमं कारणं भवेत्॥ ७०॥

ध्यान वर्णन।

मन्त्रयोग हठयोग और लययोगमें पृथक् पृथक् स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान और विन्दुध्यान, ये तीन प्रकारके ध्यान नियत किये गये हैं। जिनमेंसे मूर्तिमान् इष्टदेव मूर्तिका जो ध्यान है वह स्थूलध्यान, जिसके द्वारा तेजोमय ब्रह्मका दर्शन होता है वह ज्योतिर्ध्यान और विन्दुमय ब्रह्म और कुल कुण्डलिनी शक्तिका जो ध्यान किया जाता है वह विन्दुध्यान कहा जाता है। मन्त्रयोगोक्त स्थूल ध्यानके भेद पञ्चोपासनाके अनुसार अनेक हैं; परन्तु हठयोगके ज्योतिर्ध्यानकी शैली एकही है। केवल ध्यान स्थान साधकके अधिकारके भेदसे त्रिविध हैं। दीप कलिकावत् तेजोमय ब्रह्मध्यानको ज्योतिर्ध्यान कहते हैं, वह प्रकृति ध्यानभी है और ब्रह्म ध्यान भी है, क्योंकि "अहं ममेतिवत्" ब्रह्म और प्रकृतिमें अभेद है। तेजोमय रूपकल्पनाके द्वारा ब्रह्मध्यान करनेको ज्योतिर्ध्यान कहते हैं। उसके ध्यान करनेकी शैली श्रीगुरुदेव-

---

अथ ध्यानवर्णनम्।

मन्त्रयोगो हठश्चैव लययोगः पृथक् पृथक्।
स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानन्तु त्रिविधं विदुः ॥ १ ॥
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं भवेत्।
विन्दुं विन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता ॥ २ ॥
स्थूलध्यानं हि मन्त्रस्य विविधं परिकीर्तितम्।
उपासनां पञ्चविधामनुसृत्य महर्षिभिः ॥ ३ ॥
एकं वै ज्योतिषो ध्यानमधिकारस्य भेदतः।
साधकानां विनिर्दिष्टं त्रिविधं ध्यानधाम वै ॥ ४ ॥
ध्यानं यद्ब्रह्मणस्तेजोमयं दीपार्चिसन्निभम्।
ज्योतिर्ध्यानं हि भवति प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ५ ॥

की कृपासे ही प्राप्त हो सकी है। नाभि, हृदय और भ्रूयुगल, ये तीनों स्थान ज्योतिर्ध्यानके हैं। साधकके अधिकार भेदसे ही ये स्थान निर्णीत किये गये हैं। कोई कोई योगवित् आधारपद्मरूपी चतुर्थ स्थान भी निरूपित करते हैं। ज्योतिर्ध्यानकी सिद्धावस्थामें आत्मसाक्षात्कार होता है। उपनिषत् और तन्त्रोंमें ज्योतिर्ध्यानकी बहुत कुछ महिमा कीर्तित हुई है॥ ६-९॥

समाधि वर्णन।

मन्त्रयोगकी समाधिको महाभाव और हठयोगकी समाधिको महाबोध कहते हैं। हठयोगके द्वारा समाधि सुसाध्य है। प्राणायामसिद्धि-

---

अहं ममेतिवृत्तौ चाऽभिन्नौ हि परिकीर्त्तितौ।
ध्यानं वै ब्राह्मणस्तेजोमयं रूपं प्रकल्पयेत्॥ ६॥
ज्योतिर्ध्यानं भवेत्तद्धि प्राप्यं गुरुकृपावशात्।
नाभिहृद्भ्रूयुगान्याहुर्ध्यानस्थानं मनीषिणः॥ ७॥
स्थानभेदो विनिर्णीतः साधकस्याऽधिकारतः।
आधारपद्ममपरं ध्यानस्थानं चतुर्थकम्॥ ८॥
केचिन्निरूपयन्तीह योगतत्त्वविशारदाः।
सिद्धे ध्याने हि प्रत्यक्षीभवत्यात्मा विशेषतः॥
कीर्त्तितश्चाऽस्य महिमा तन्त्रेषूपनिषत्सु च॥ ९॥

अथ समाधिवर्णनम्।

समाधिर्मन्त्रयोगस्य महाभाव इतीरितः।
हठस्य च महाबोधः समाधिस्तेन सिध्यति॥ १॥

के द्वारा वायुजय हो जानेपर कुम्भक करनेकी पूर्ण शक्ति प्राप्त होनेसे हठयोग समाधिकी प्राप्ति होती है। वीर्य, वायु और मन, ये तीनों स्थूल सूक्ष्म और कारण सम्बन्धसे एक ही हैं। इन तीनोंमें वायु ही प्रधान है; क्योंकि वायु शक्तिरूप है। वायुके निरोध द्वारा मनका निरोध हो जाता है; सुतरां वायुके लयसे मनका लय और मनके लयसे समाधिकी उत्पत्ति होती है। ध्यानकी सिद्धिके साथ ही साथ प्राणायामसिद्धि द्वारा समाधि प्राप्त होती है। किस अधिकारीको किस प्राणायामके द्वारा महाबोधकी प्राप्ति होगी सो श्रीगुरुदेवके द्वारा जानने योग्य है। योगचतुष्टयके ज्ञाता योगिराज ही इसका उपदेश ठीक ठीक कर सकते हैं। समाधि ही योगसाधनका परम फल है। शरीरसे मनको अलग करके उसका लय करते हुए स्वस्वरूपको प्राप्त करे, यही समाधि है।

प्राणायामस्य सिद्धया वै जीयन्ते प्राणवायवः।
ततोऽधिगम्यते शक्तिः पूर्णा कुम्भकसाधने ॥ २ ॥

समाधिर्हठयोगस्य त्वरितं प्राप्यते ततः।
शुक्रं वायुर्मनश्चैते स्थूलकारणसूक्ष्मतः ॥ ३ ॥

अभिन्नास्तत्र प्राधान्यं वायोरेव विदुर्बुधाः।
शक्तिस्वरूपवत्त्वाद्धि तन्निरोधान्मनोजयः ॥ ४ ॥

तस्मान्मनोजयाच्चैव समाधिः समवाप्यते।
प्राणायामे तथा ध्याने सिद्धे वै सोऽधिगम्यते ॥ ५ ॥

प्राणायामस्योपदेशः कतमायाऽधिकारिणे।
प्रदत्तः कीदृशश्चैव महाबोधप्रदायकः ॥ ६ ॥

एतत्सर्वं हि विज्ञेयं योगज्ञाद्गुरुदेवतः।
योगक्रियायाः परमं समाधिः फलमिष्यते ॥ ७ ॥

शरीरतो मनः सम्यगपनीय विजित्य तत्।
स्वस्वरूपोपलब्धिर्हि समाधिरिति चोच्यते ॥ ८ ॥

समाधिदशामें मनका लय हो जाता है और "मैं ही अद्वितय ब्रह्म सच्चिदानन्दरूप नित्यमुक्त हूँ" ऐसा अनुभव होता है ॥ १-६ ॥

इस प्रकार हठयोगसंहिताका भाषानुवाद समाप्त हुआ ।

अद्वितीयमहं ब्रह्म सच्चिदानन्दरूपधृक् ।
नित्यमुक्तोऽस्मीति सदा समाधावनुभूयते ॥ ९ ॥

इत्यध्यात्मविद्यायां योगशास्त्रे समाप्तेयं हठयोगसंहिता ।

श्रीविश्वनाथो जयति ।

धर्मप्रचारका सुलभ साधन ।

समाजकी भलाई ! मातृभाषाकी उन्नति !!

देशसेवाका विराट् आयोजन !!!

इस समय देशका उपकार किन उपायोंसे हो सकता है ? संसारके इस छोरसे उस छोरतक चाहे किसी चिन्ताशील पुरुषसे यह प्रश्न कीजिये, उत्तर यही मिलेगा कि धर्मभावके प्रचारसे; क्योंकि धर्मने ही संसारको धारण कर रक्खा है । भारतवर्ष किसी समय संसारका गुरु था, आज वह अधःपतित और दीन हीन दशामें क्यों पच रहा है ? इसका भी उत्तर यही है कि वह धर्मभावको खो बैठा है । यदि हम भारतसे ही पूछें कि तू अपनी उन्नतिके लिये हमसे क्या चाहता है ? तो वह यही उत्तर देगा कि मेरे प्यारे पुत्रो ! धर्मभावकी वृद्धि करो । संसारमें उत्पन्न होकर जो व्यक्ति कुछ भी सत्कार्य करनेके लिये उद्यत हुए हैं, उन्हें इस बातका पूर्ण अनुभव होगा कि ऐसे कार्योंमें कैसे विघ्न और कैसी बाधाएँ उपस्थित हुआ करती हैं । यद्यपि धीर पुरुष उनकी पर्वाह नहीं करते और यथासंभव उनसे लाभही उठाते हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उनके कार्योंमें उन विघ्न बाधाओंसे कुछ रुकावट अवश्यही हो जाती है । श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलके धर्मकार्य्यमें इस प्रकारकी अनेक बाधाएँ होनेपर भी अब उसे जनसाधारणका हित साधन करनेका सर्वशक्तिमान् भगवान्ने सुअवसर प्रदान कर दिया है । भारत अधार्मिक नहीं है, हिन्दुजाति धर्म्मप्राण जाति है, उसके रोम रोममें धर्म्मसंस्कार ओतप्रोत हैं । केवल वह अपने रूपको—धर्मभावको—भूल रही है । उसे अपने स्वरूपकी पहिचान करा देना—धर्मभावको स्थिर रखना—ही श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलका एक पवित्र और प्रधान उद्देश्य है । यह कार्य २० वर्षोंसे महामण्डल कर रहा है और ज्यों ज्यों उसको अधिक सुअवसर मिलेगा, त्यों त्यों वह जोर शोरसे यह काम करेगा । उसका विश्वास है कि इसी

उपायसे देशका सच्चा उपकार होगा और अन्तमें भारत पुनः अपने गुरुत्वको प्राप्त कर सकेगा।

इस उद्देश्य साधनके लिये सुलभ दो ही मार्ग हैं। (१) उपदेशकों द्वारा धर्मप्रचार करना और (२) धर्म रहस्य सम्बन्धीय मौलिक पुस्तकोंका उद्धार और प्रकाश करना। महामण्डलने प्रथम मार्गका अवलम्बन आरम्भसे ही किया है और अब तो उपदेशक महाविद्यालय स्थापित कर महामण्डलने वह मार्ग स्थिर और परिष्कृत कर लिया है। दूसरे मार्गके सम्बन्धमें भी यथासाध्य उद्योग आरम्भसे ही किया जा रहा है, विविध ग्रन्थोंका संग्रह और निर्माण करना, मासिक पत्रिकाओंका सञ्चालन करना, शास्त्रीय ग्रन्थोंका आविष्कार करना, इस प्रकारके उद्योग महामण्डलने किये हैं और उनमें सफलता भी प्राप्त की है; परन्तु अभी तक यह कार्य संतोषजनक नहीं हुआ है। महामण्डलने अब इस विभागको उन्नत करनेका विचार किया है। उपदेशकों द्वारा जो धर्मप्रचार होता है उसका प्रभाव चिरस्थायी होनेके लिये उसी विषयकी पुस्तकोंका प्रचार होना परम आवश्यक है; क्योंकि वक्ता एक दो बार जो कुछ सुना देगा, उसका मनन बिना पुस्तकोंका सहारा लिये नहीं हो सकता। इसके सिवाय सब प्रकारके अधिकारियोंके लिये एक वक्ता कार्यकारी नहीं हो सकता। पुस्तकप्रचार द्वारा यह काम सहल हो जाता है। जिसे जितना अधिकार होगा, वह उतने ही अधिकारकी पुस्तकें पढ़ेगा और महामण्डल भी सब प्रकारके अधिकारियोंके योग्य पुस्तकें निर्माण करेगा। सारांश, देशकी उन्नतिके लिये, भारत गौरवकी रक्षाके लिये और मनुष्योंमें मनुष्यत्व उत्पन्न करनेके लिये महामण्डलने अब पुस्तक प्रकाशन-विभागको अधिक उन्नत करनेका विचार किया है और उसकी सर्व साधारणसे प्रार्थना है कि वे ऐसे सत्कार्यमें इसका हाथ बटावें एवं इसकी सहायता कर अपनी ही उन्नति कर लेने को प्रस्तुत होजावें।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके व्यवस्थापक पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजकी सहायतासे काशीके प्रसिद्ध विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर प्रामाणिक, सुबोध और सुदृश्यरूपसे यह ग्रन्थमाला निकलेगी। ग्रन्थमालाके जो ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं उसकी सूची नीचे प्रकाशित की जाती है।

स्थिर ग्राहकोंके नियम ।

(१) इससमय हमारी ग्रन्थमालामें निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं:—

मंत्रयोगसंहिता (भाषानुवादसहित) १)
हठयोगसंहिता " ॥)
भक्तिदर्शन (भाषाभाष्य सहित) १)
योगदर्शन (भाषाभाष्य सहित नूतन संस्करण) २)
दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग (भाषाभाष्यसहित) १॥)
कल्किपुराण (भाषानुवाद सहित) १)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत (नवीन संस्करण) १)
उपदेश पारिजात (संस्कृत) ॥)
गीतावली ॥)
धर्मचन्द्रिका १)
भारतधर्ममहामण्डल रहस्य (नूतन संस्करण) १)
धर्मकल्पद्रुम प्रथम खण्ड २)
" द्वितीय खण्ड १॥)
" तृतीय खण्ड (नूतन संस्करण) २)
" चतुर्थ खण्ड २)
" पञ्चम खण्ड २)
" षष्ठ खण्ड १॥)
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड (भाषाभाष्यसहित) १)
गुरुगीता (भाषानुवाद सहित नूतनसंस्करण) ।)
शम्भुगीता (भाषानुवादसहित) ॥।)
धीशगीता " ॥)
शक्तिगीता " ॥।)
सूर्य्यगीता " ॥)
विष्णुगीता " ॥।)
सन्न्यासगीता " ॥।)
रामगीता (भाषानुवाद और टिप्पणी सहित सजिल्द, २)
आचारचन्द्रिका १)

(२) इनमेंसे जो कमसे कम ४) मूल्यकी पुस्तकें पूरे मूल्यमें खरीदेंगे अथवा स्थिरग्राहक होनेका चन्दा १) भेज देंगे उन्हें शेष और आगे प्रकाशित होनेवाली सब पुस्तकें ¾ मूल्यमें दी जायंगी।

(३) स्थिर ग्राहकोंको मालामें ग्रथित होनेवाली हर एक पुस्तक खरीदनी होगी। जो पुस्तक इस विभाग द्वारा छापी जायगी वह एक विद्वानोंकी कमेटी द्वारा पसन्द करा ली जायगी।

(४) हर एक ग्राहक अपना नम्बर लिखकर या दिखाकर हमारे कार्यालयसे अथवा जहां वह रहता हो वहां हमारी शाखा हो तो वहांसे; स्वल्प मूल्य पर पुस्तकें खरीद सकेगा।

५) जो धर्मसभा इस धर्म्मकार्य्यमें सहायता करना चाहे और जो सज्जन इस ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक होना चाहें वे मेरे नाम पत्र भेजनेकी कृपा करें।

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, अध्यक्ष शास्त्रप्रकाश विभाग,
श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्य्यालय, जगत्गंज, बनारस।

इस विभाग द्वारा प्रकाशित समस्त धर्मपुस्तकोंका विवरण।

सदाचारसोपान। यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंके धर्म्म शिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। उर्दू और बंगला भाषामें इसका अनुवाद होकर छपचुका है और सारे भारतवर्षमें इसकी बहुत कुछ उपयोगिता मानी गयी है। इसकी सात आवृत्तियां छपचुकी हैं। अपने बच्चोंकी धर्म्मशिक्षाके लिये इस पुस्तकको हर एक हिन्दूको मंगवाना चाहिये। मूल्य -) एक आना।

कन्याशिक्षासोपान। कोमलमति कन्याओंको धर्म्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुतही उपयोगी है। इस पुस्तककी बहुत कुछ प्रशंसा हुई है। इसका बंगला अनुवाद छप चुका है। हिन्दूमात्र को अपनी अपनी कन्याओंको धर्म्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक मंगवानी चाहिये। मूल्य -) एक आना

धर्म्मसोपान। यह धर्मशिक्षा विषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इससे धर्म्मका साधारण ज्ञान भली भांति होजाता है। यह पुस्तक क्या बालक बालिका, क्या वृद्ध स्त्री पुरुष, सबके लिये बहुत ही उपकारी है। धर्म्मशिक्षा पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तकको मंगावें। मूल्य ।) चार आना

ब्रह्मचर्यसोपान। ब्रह्मचर्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। सब ब्रह्मचारी आश्रम, पाठशाला और स्कूलोंमें इस ग्रन्थकी पढ़ाई होनी चाहिये। मूल्य =) तीन आना

साधनसोपान। यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुत ही उपयोगी है। इसका बंगला अनुवाद भी छपचुका है। बालक बालिकाओंको पहलेसे ही इस पुस्तकको पढना चाहिये। यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि बालक और वृद्ध समानरूपसे इससे साधनविषयक शिक्षा लाभ कर सकते हैं। मूल्य =)

शास्त्रसोपान। सनातनधर्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रन्थमें वर्णित है। सब शास्त्रोंका कुछ विवरण समझनेके लिये प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। मूल्य ।) चार आना

धर्म्मप्रचारसोपान। यह ग्रन्थ धर्मोपदेश देनेवाले उपदेशक और पौराणिक पण्डितोंके लिये बहुत हितकारी है। मू० ≡) तीन आना।

राजशिक्षासोपान। राजा महाराजा और उनके कुमारोंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह ग्रन्थ बनाया गया है; परन्तु सर्वसाधारणकी धर्म्मशिक्षाके लिये भी यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है इसमें सनातन धर्म्मके अङ्ग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं। मू० ≡) तीन आना।

ऊपर लिखित सब ग्रन्थ धर्मशिक्षा विषयक हैं इस कारण स्कूल कालेज और पाठशालाओंको इकट्ठे लेनेपर कुछ सुविधासे मिल सकेंगे और पुस्तक विक्रेताओंको इनपर योग्य कमीशन दिया जायगा।

मन्त्रयोगसंहिता। योगविषयक भाषानुवादसहित ऐसा अपूर्व्व ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें मन्त्रयोगके १६ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधनप्रणाली आदि सब अच्छीतरहसे वर्णन किये गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे परम लाभ उठा सकते हैं। इसमें मंत्रोंका स्वरूप और उपास्यनिर्णय बहुत अच्छा किया गया है। घोर अनर्थकारी साम्प्रदायिक विरोधके दूर करनेके लिये यह एकमात्र ग्रन्थ है। इसमें नास्तिकोंके मूर्तिपूजा, मन्त्रसिद्धि आदि विषयोंमें जो प्रश्न होते हैं उनका अच्छा समाधान है। मूल्य १) एक रुपया।

हठयोग संहिता। योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें हठयोगके ७ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधन प्रणाली आदि सब अच्छी तरह वर्णन किये गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे परम लाभ उठा सकते हैं। मूल और भाषानुवाद सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। मूल्य ॥) आ०

भक्तिदर्शन। श्रीशाण्डिल्य सूत्रोंपर बहुत विस्तृत हिन्दी भाष्यसहित और एक अति विस्तृत भूमिकासहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। हिन्दीका यह एक असाधारण ग्रन्थ है। ऐसा भक्ति-

सम्बन्धी ग्रन्थ हिन्दीमें पहले प्रकाशित नहीं हुआ था। भगवद्भक्तिके विस्तारित रहस्योंका ज्ञान इस ग्रन्थके पाठ करनेसे होता है। भक्तिशास्त्रके समझनेकी इच्छा रखनवाले और श्रीभगवान्में भक्ति करनेवाले धार्मिकमात्रको इस ग्रन्थका पढ़ना उचित है। मूल्य १)

योगदर्शन। हिन्दीभाष्य सहित। इस प्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। सब दर्शनोंमें योगदर्शन सर्ववादिसम्मत दर्शन है और इसमें साधनके द्वारा अन्तर्जगत्के सब विषयोंका प्रत्यक्ष अनुभव करा देनेकी प्रणाली रहनेके कारण इसका पाठन और भाष्य एवं टीका निर्माण वही सुचारु रूपसे कर सकता है जो योगके क्रियासिद्धांशका पारगामी हो। इस भाष्यके निर्माणमें पाठक उक्त विषयकी पूर्णता देखेंगे। प्रत्येक सूत्रका भाष्य प्रत्येक सूत्रके आदिमें भूमिका देकर ऐसा क्रमबद्ध बनादिया गया है कि जिससे पाठकोंको मनोनिवेश पूर्वक पढ़ने पर कोई असम्बद्धता नहीं मालूम होगी और ऐसा प्रतीत होगा कि महर्षि सूत्रकारने जीवोंके क्रमाभ्युदय और निःश्रेयसके लिये मानो एक महान् राजपथ निर्माण कर दिया है। इसका द्वितीय संस्करण छपकर तयार है इसमें इस भाष्यको और भी अधिक सुस्पष्ट, परिवर्द्धित और सरल किया गया है। मू० २)

दैवीमीमांसा दर्शन प्रथम भाग। वेदके तीन काण्ड हैं, यथाः—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्डका वेदान्त दर्शन, कर्मकाण्डका जैमिनी दर्शन और भरद्वाज दर्शन और उपासनाकाण्डका यह अङ्गिरा दर्शन है। इसका नाम दैवीमीमांसा दर्शन है। यह ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसके चार पाद हैं, यथाः—प्रथम रसपाद, इस पादमें भक्तिका विस्तारित विज्ञान वर्णित है। दूसरा सृष्टि पाद, तीसरा स्थिति पाद और चौथा लयपाद, इन तीनों पादोंमें दैवीमाया, देवताओंके भेद, उपासनाका विस्तारित वर्णन और भक्ति और उपासनासे मुक्तिकी प्राप्तिका सब कुछ विज्ञान वर्णित है। इस प्रथम भागमें इस दर्शन शास्त्रके प्रथम दो पाद हिन्दी अनुवाद और हिन्दी भाष्यसहित प्रकाशित हुए हैं। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

कल्किपुराण। कल्किपुराणका नाम किसने नहीं सुना है। वर्तमान समयके लिये यह बहुत हितकारी ग्रन्थ है। विशुद्ध हिन्दी अनु-

वाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। धर्म्म जिज्ञासुमात्रको इस ग्रन्थको पढ़ना उचित है। मूल्य १)

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत। भारतका प्राचीन गौरव और आर्य-जातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। इसका द्वितीय-संस्करण परिवर्द्धित और संस्कृत होकर छप चुका है। मूल्य १)

उपदेशपारिजात। यह संस्कृत गद्यात्मक अपूर्व ग्रन्थ है। सनातनधर्म क्या है, धर्मोपदेश किसको कहते हैं, सनातनधर्मके सब शास्त्रोंमें क्या विषय है, धर्मवक्ता होनेके लिये किन २ योग्यताओंके होनेकी आवश्यकता है इत्यादि अनेक विषय इस ग्रन्थमें संस्कृत विद्वान्मात्रको पढ़ना उचित है और धर्म्मवक्ता, धर्म्मोपदेशक, पौराणिक पण्डित आदिके लिये तो यह ग्रन्थ सब समय साथ रखने योग्य है। मूल्य ॥) आठ आना

इस संस्कृत ग्रन्थके अतिरिक्त संस्कृत भाषामें योगदर्शन, सांख्य दर्शन, दैवीमीमांसादर्शन आदि दर्शन सभाष्य, मंत्रयोगसंहिता, हठयोगसंहिता, लययोगसंहिता, राजयोगसंहिता, हरिहरब्रह्मसाम-रस्य, योगप्रवेशिका, धर्मसुधाकर, श्रीमधुसूदनसंहिता, आदि ग्रन्थ छप रहे हैं, और शीघ्रही प्रकाशित होनेवाले हैं।

गीतावली। इसको पढ़नेसे सङ्गीतशास्त्रका मर्म्म थोड़ेमें ही समझमें आसकेगा। इसमें अनेक अच्छे अच्छे भजनोंका भी संग्रह है। सङ्गीतानुरागी और भजनानुरागियोंको अवश्य इसको लेना चाहिये। मूल्य ॥) आठ आना।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलरहस्य। इस ग्रन्थमें सात अध्याय हैं, यथा—आर्यजातिकी दशाका परिवर्त्तन, चिन्ताका कारण, व्याधिनिर्णय, औषधि प्रयोग, सुपथ्यसेवन, बीजरक्षा और महायज्ञ साधन। यह ग्रन्थरत्न हिन्दूजातिकी उन्नतिके विषयका असाधारण ग्रन्थ है। प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीको इस ग्रन्थको पढ़ना चाहिये। द्वितीयावृत्ति छप चुकी है। इसमें बहुतसा विषय बढ़ाया गया है। इस ग्रन्थका आदर सारे भारतवर्षमें समान रूपसे हुआ है। धर्मके गूढ़ तत्त्व भी इसमें बहुत अच्छी तरहसे बताये गये हैं। इसका बंगला अनुवाद भी छप चुका है। मूल्य १) एक रुपया।

श्रीभगवद्गीता प्रथमखण्ड। श्रीगीताजीका अपूर्व हिन्दी

भाष्य यह प्रकाशित हो रहा है जिसका प्रथम खण्ड, जिसमें प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्यायका कुछ हिस्सा है, प्रकाशित हुआ है। आजतक श्रीगीताजी पर अनेक संस्कृत और हिन्दी भाष्य प्रकाशित हुए हैं परन्तु इस प्रकारका भाष्य आजतक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। गीताका अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूपी त्रिविध स्वरूप, प्रत्येक श्लोकका त्रिविध अर्थ और सब प्रकारके अधिकारियोंके समझने योग्य गीता-विज्ञानका विस्तारित विवरण इस भाष्यमें मौजूद है। मूल्य १) एक रुपया

तत्त्वबोध। भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित। यह मूल ग्रन्थ श्रीशङ्कराचार्यकृत है। इसका बंगानुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। मूल्य =) दो आना।

स्तोत्रकुसुमाञ्जलि मूल। इसमें पञ्चदेवता, अवतार और ब्रह्मकी स्तुतियोंके साथ साथ आज कलकी आवश्यकतानुसार धर्म-स्तुति, गंगादि पवित्र स्थानोंकी स्तुति, वेदान्तप्रतिपदक स्तुतियां और काशीके प्रधान देवता श्रीविश्वनाथादिकी स्तुतियां हैं। मूल्य ।)

निगमागमचन्द्रिका। प्रथम और द्वितीय भागकी दो पुस्तकें धर्मानुरागी सज्जनोंको मिल सकती हैं। प्रत्येक का मूल्य१) एक रुपया।

पहलेके पाँच सालके पाँच भागोंमें सनातनधर्मके अनेक गूढ़ रहस्यसम्बन्धी ऐसे २ प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं कि आजतक वैसे धर्मसम्बन्धी प्रबन्ध और कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। जो धर्मके अनेक रहस्य जानकर तृप्त होना चाहें वे इन पुस्तकोंको मँगावें। मूल्य पांचों भागोंका २॥) रुपया।

मैनेजर, निगमागमबुकडिपो।

महामण्डलभवन, जगतगंज, बनारस।

सप्त गीताएं।

पञ्चोपासनाके अनुसार पाँच प्रकारके उपासकोंके लिये पाँच गीताएं--श्रीविष्णुगीता, श्रीसूर्य्यगीता, श्रीशक्तिगीता, श्रीधीशगीता और श्रीशम्भुगीता एवं सन्न्यासियोंके लिये सन्न्यासगीता और साधकोंके लिये गुरुगीता भाषानुवाद सहित छप चुकी हैं। श्रीभारतधर्म-महामण्डलने इन सात गीताओंका प्रकाशन निम्न लिखित उद्देश्योंसे

किया है:—१ म, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको धर्मके नामसे ही अधर्म्म सञ्चित करनेकी अवस्थामें पहुंचा दिया है, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको अहंकारत्यागी होनेके स्थानमें घोर साम्प्रदायिक अहंकारसम्पन्न बना दिया है, भारतकी वर्तमान दुर्दशा जिस साम्प्रदायिक विरोधका प्रत्यक्ष फल है और जिस साम्प्रदायिक विरोधने साकार-उपासकोंमें घोर द्वेषदावानल प्रज्वलित कर दिया है उस साम्प्रदायिक विरोधका समूल उन्मूलन करना और २ य, उपासनाके नामसे जो अनेक इन्द्रियासक्तिकी चरितार्थताके घोर अनर्थकारी कार्य होते हैं उनका समाजमें अस्तित्व न रहने देना तथा ३ य, समाजमें यथार्थ भगवद्भक्तिके प्रचार द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस-प्राप्तिकी अनेक सुविधाओंका प्रचार करना। इन सातों गीताओंमें अनेक दार्शनिक तत्त्व, अनेक उपासनाकाण्डके रहस्य और प्रत्येक उपास्य देवकी उपासनासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय सुचारुरूपसे प्रतिपादित किये गये हैं। ये सातों गीताएं उपनिषद्रूप हैं। प्रत्येक उपासक अपने उपास्यदेवकी गीतासे तो लाभ उठावेगा ही, किन्तु, अन्य चार गीताओंके पाठ करनेसे भी वह अनेक उपासनातत्त्वोंको तथा अनेक वैज्ञानिक रहस्योंको जान सकेगा और उसके अन्तःकरणमें प्रचलित साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे जैसा विरोध उदय होता है वैसा नहीं होगा और वह परमशान्तिका अधिकारी हो सकेगा। सन्न्यासगीतामें सब सम्प्रदायोंके साधु और सन्न्यासियोंके लिये सब जानने योग्य विषय सन्निविष्ट हैं। सन्न्यासिगण इसके पाठ करनेसे विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। गृहस्थोंके लिये भी यह ग्रन्थ धर्म्मज्ञानका भाण्डार है। श्रीमहामण्डलप्रकाशित गुरुगीताके सदृश ग्रन्थ आज तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें गुरु-शिष्य-लक्षण, उपासनाका रहस्य और भेद, मन्त्र हठ लय और राजयोगोंके लक्षण और अङ्ग एवं गुरुमाहात्म्य, शिष्यकर्त्तव्य, परम तत्त्वका स्वरूप और गुरुशब्दार्थ आदि सब विषय स्पष्टरूपसे हैं। मूल, स्पष्ट सरल और सुमधुर भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित यह ग्रन्थ छपा है। गुरु और शिष्य दोनोंका उपकारी यह ग्रन्थ है। इसका अनुवाद बंगभाषामें भी छप चुका है। पाठक इन सातों गीताओंको मंगाकर देख सकते हैं, ये छप चुकी हैं। विष्णुगीताका

मूल्य ॥।) सूर्यगीताका मूल्य ॥) शक्तिगीताका मूल्य ॥।) धीशगीताका मूल्य ॥) शंभुगीताका मूल्य ॥।) सन्यासगीताका मूल्य ॥।) और गुरुगीताका मूल्य ।)' है। इनमेंसे पञ्चोपासनाकी पांचगीताओंमें एक एक तीनरंगा विष्णुदेव सूर्य्यदेव भगवती और गणपतिदेव तथा शिवजीका चित्र भी दिया गया है। इनके अतिरिक्त शम्भुगीतामें प्रकाशित वर्णाश्रमबन्ध नामक अद्भुत और अपूर्व चित्र भी सर्वसाधारणके देखने योग्य है।

मैनेजर, निगमागम बुकडिपो,
महामण्डलभवन, जगत्‌गंज बनारस।

धार्मिक विश्वकोष।

(श्रीधर्म्मकल्पद्रुम)

यह हिन्दुधर्म्मका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रन्थ है। हिन्दू जातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी जरूरत है उनमेंसे सबके बड़ी भारी ज़रूरत एक ऐसे धर्म्मग्रन्थकी थी कि जिसके अध्ययन-अध्यापनके द्वारा सनातन धर्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अङ्ग उपांगोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथ ही साथ वेदों और सब शास्त्रोंका आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए विज्ञानोंका यथाक्रम स्वरूप जिज्ञासुको भलीभाँति विदित हो सके। इसी गुरुतर अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजीने इस ग्रन्थका प्रणयन करना प्रारम्भ किया है। इसमें वर्तमान समयके आलोच्य सभी विषय विस्तृतरूपसे दिये जायंगे। अबतक इसके छः खण्डोंमें जो अध्याय प्रकाशित हुए हैं वे ये हैं:—धर्म्म, दानधर्म्म, तपोधर्म, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ, ज्ञानयज्ञ, महायज्ञ, वेद, वेदाङ्ग, दर्शनशास्त्र (वेदोपाङ्ग) स्मृतिशास्त्र, पुराणशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, उपवेद, ऋषि और पुस्तक, साधारण धर्म्म और विशेष धर्म्म, वर्णधर्म्म, आश्रमधर्म्म, नारीधर्म (पुरुषधर्म्मसे नारीधर्म्मकी विशेषता), आर्यजाति, समाज और नेता, राजा और प्रजाधर्म्म, प्रवृत्तिधर्म्म और निवृत्तिधर्म्म, आपद्धर्म, भक्ति और योग, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, गुरु और

दीक्षा, वैराग्य और साधन, आत्मतत्त्व, जीवतत्त्व, प्राण और पीठतत्त्व, सृष्टि स्थिति प्रलयतत्त्व, ऋषि देवता और पितृतत्त्व, अवतारतत्त्व, माया तत्त्व, त्रिगुणतत्त्व, त्रिभावतत्त्व, कर्म्मतत्त्व, मुक्तितत्त्व, पुरुषार्थ और वर्णाश्रमसमीक्षा, दर्शनसमीक्षा, धर्म्मसम्प्रदायसमीक्षा, धर्मपन्थसमीक्षा और धर्ममत समीक्षा। आगेके खण्डोंमें प्रकाशित होनेवाले अध्यायोंके नाम ये हैं:—साधन समीक्षा, चतुर्दशलोकसमीक्षा, कालसमीक्षा, जीवन्मुक्ति-समीक्षा, सदाचार, पञ्च महायज्ञ, आह्निककृत्य, षोडश संस्कार, श्राद्ध, प्रेतत्त्व और परलोक, सन्ध्या, तर्पण, ओंकार-महिमा और गायत्री, भगवन्नाम माहात्म्य, वैदिक मन्त्रों और शास्त्रोंका अपलाप, तीर्थ महिमा, सूर्य्यादिग्रहपूजा, गोसेवा, संगीत-शास्त्र, देश और धर्मसेवा इत्यादि इत्यादि। इस ग्रन्थसे आजकलके अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्म्मग्रन्थों और धर्मप्रचारके द्वारा जो हानि हो रही है वह सब दूर होकर यथार्थ रूपसे सनातन वैदिक धर्म्मका प्रचार होगा। इस ग्रन्थरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेशमात्र भी नहीं है और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं जिससे सकल प्रकारके अधिकारी कल्याण प्राप्त कर सकें। इसमें और भी एक विशेषता यह है कि हिन्दुशास्त्र के सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय, आजकल की पदार्थ विद्या (Science) के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये हैं जिससे आजकलके नवशिक्षित पुरुषभी इससे लाभ उठा सकें। इसकी भाषा सरल, मधुर और गम्भीर है। यह ग्रन्थ चौसठ अध्याय और आठसमुल्लासोंमें पूर्ण होगा और यह बृहत् ग्रन्थ रायल साइजके चार हजार पृष्ठोंसे अधिक होगा तथा बारह खण्डोंमें प्रकाशित होगा। इसीके अन्तिम खण्डमें आध्यात्मिक शब्दकोष भी प्रकाशित करनेका विचार है। इसके छः खण्ड प्रकाशित हो चुके है। प्रथम खण्डका मूल्य २), द्वितीय का १॥), तृतीयके द्वितीय संस्करणका २), चतुर्थका २) पंचमका २) और षष्ठका १॥) है। इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागज पर भी छापे गये हैं और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं। मूल्य ५) है। सातवाँ खण्ड यन्त्रस्थ है।

मैनेजर, निगमागम बुकडिपो,

महामण्डलभवन, जगत्गंज, बनारस।

श्रीरामगीता ।

यह सर्वजीवहितकर उपनिषद् ग्रन्थ अबतक अप्रकाशित था। श्री महर्षि वशिष्ठकृत 'तत्त्व सारायण' नामक एक विराट् ग्रन्थ है, उसीके अन्तर्गत यह गीता है। इसके १८ अध्याय हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं; १–अयोध्यामण्डपादिवर्णन, २–प्रमाणसारविवरण, ३–ज्ञान योगनिरूपण, ४–जीवन्मुक्तिनिरूपण, ५–विदेहमुक्तिनिरूपण, ६–वासनाक्षयादिनिरूपण, ७–सप्तभूमिकानिरूपण, ८–समाधिनिरूपण, ९–वर्णाश्रमव्यवस्थापन, १०–कर्मविभागयोगनिरूपण, ११–गुणत्रयविभागयोगनिरूपण, १२–विश्वरूपनिरूपण, १३–तारकप्रणवविभागयोग, १४–महावाक्यार्थविवरण, १५–नवचक्रविवेकयोगनिरूपण, १६–अणिमादिसिद्धिदूषण, १७–विद्यासन्ततिगुरुतत्त्वनिरूपण, १८–सर्वाध्यायसङ्गतिनिरूपण। कर्म, उपासना और ज्ञानका अद्भुत सामञ्जस्य इस ग्रन्थमें दिखाया गया है। विषयोंके स्पष्टीकरणके लिये ग्रन्थमें ७ त्रिवर्ण चित्र भी दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—१ श्री राम, सीतामाता, वीरलक्ष्मण, २—श्री राम, लक्ष्मण और जटायु, ३—श्रीराम, सीता और हनूमान्, ४—वृहत् श्रीरामपञ्चायतन, ५—श्रीसीताराम, ६—श्रीरामपञ्चायतन, ७—श्रीराम हनुमान्। इनके सिवाय इसके सम्पादक स्वर्गीय श्रीदरबार महारावल बहादुर डूंगरपुर नरेश महोदयका भी हाफ टोन चित्र छापा गया है। बढ़िया कागज पर सुन्दर छपाई और मजबूत जिल्दबन्दी भी हुई है। स्वर्गीय महारावल बहादुरने बड़े परिश्रमसे इस ग्रन्थका सरल हिन्दी भाषामें अनुवाद किया है और उनके पूज्यपाद गुरुदेवने अति सुन्दर वैज्ञानिक टिप्पणियाँ लिखकर ग्रन्थको सर्वाङ्ग सुन्दर बनाया है। ग्रन्थके प्रारम्भमें जो भूमिका दी गई है, उसमें श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रकी समालोचना अलौकिक रीति पर की गई है जिसके पढनेसे पाठक कितनेही गूढ़ रहस्योंका परिचय पा जायेंगे। आज तक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित न होनेसे यह अप्राप्य और अमूल्य है। आशा है, सर्व साधारण इसका संग्रह कर नित्यपाठ कर, और इसमें उल्लिखित तत्त्वोंका चिन्तन कर कर्म, उपासना और ज्ञानके अद्भुत सामञ्जस्यका अलभ्य लाभ उठावेंगे और श्रीभारतधर्म महामण्डलके शास्त्रप्रकाशक विभागको अनुगृहीत करेंगे। मूल्य २) ।

मैनेजर–निगमागम बुकडिपो, महामण्डलभवन, जगत्गंज, बनारस।

धर्मचंद्रिका—एन्ट्रेंस क्लासके बालकोंके पाठनोपयोगी उत्तम धर्मपुस्तक है। इसमें सनातन धर्मका उदार सार्वभौम स्वरूप-वर्णन, यज्ञ, दान, तप आदि धर्माङ्गोंका विस्तृत वर्णन, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, नारीधर्म, आर्यधर्म, राजधर्म तथा प्रजाधर्मके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है। कर्मविज्ञान, सन्ध्या, पञ्च महायज्ञ आदि नित्यकर्मोंका वर्णन, षोडश संस्कारके पृथक् पृथक् वर्णन और संस्कार शुद्धि तथा क्रिया शुद्धि द्वारा मोक्षका यथार्थ मार्ग निर्देश किया गया है। इस ग्रन्थके पाठसे छात्रगण धर्मतत्त्व अवश्य ही अच्छी तरहसे जान सकेंगे। मूल्य १)

आचारचंद्रिका—यह भी स्कूलपाठ्य सदाचारसंबन्धीय धर्म-पुस्तक है। इसमें प्रातः कालसे लेकर रात्रिमें निद्राके पहले तक क्या क्या सदाचार किसलिये प्रत्येक हिन्दुसन्तानको अवश्य ही पालने चाहियें, इसका रहस्य उत्तम रीतिसे बताया गया है और आधुनिक समयके विचारसे प्रत्येक आचार पालनका वैज्ञानिक कारण भी दिखाया गया है। यह ग्रन्थ बालकोंके लिये अवश्य ही पाठ करने योग्य है। मूल्य ॥)

अंग्रेजी भाषाके धर्म्मग्रन्थ।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल शास्त्रप्रकाशक विभाग द्वारा प्रकाशित सब संहिताओं, गीताओं और दार्शनिक ग्रन्थोंका अंग्रेजी अनुवाद तयार हो रहा है जो क्रमशः प्रकाशित होगा। सम्प्रति अंग्रेजी भाषामें एक ऐसा ग्रन्थ छप गया है जिसके द्वारा सब अंग्रेजी पढ़े व्यक्तियोंको सनातन धर्मका महत्त्व, उसका सर्वजीवहितकारी स्वरूप, उसके सब अङ्गोंका रहस्य, उपासनातत्त्व, योगतत्त्व, काल और सृष्टि तत्त्व, कर्म्म तत्त्व, वर्णाश्रमधर्मतत्त्व इत्यादि सब बड़े बड़े विषय अच्छी तरह समझमें आ जावें। इसका नाम "वर्ल्ड्स इटरनल रिलिजन" है। इसका मूल्य रायलएडीशनका ५) और साधारणका ३) है। दोनोंमें जिल्द बंधी हुई हैं और सात सिवर्ण चित्र भी दिये हैं।

मैनेजर, निगमागम बुकडीपो

महामण्डलभवन, जगतगंज बनारस।

विविध विषयोंकी पुस्तकें ।

अलभ्यरमणी =) अनार्य-समाजरहस्य ≥) अन्त्येष्टिक्रिया ।) आनन्द रघुनन्दन नाटक ॥) आचारप्रबन्ध १) इङ्गलिशग्रामर ।) उपन्यास कुसुम ≥) एकान्तवासी योगी ~) कल्किपुराण उर्दू ॥) कार्तिकप्रसादकी जीवनी =) काशीमुक्ति विवेक ।~) गोवंशचिकित्सा ।) गोगीतावली ~) ग्वोसेफमेजिनी ।) जैमिनीसूत्र ।) तर्कसंग्रह ।~) दुर्गेश-नन्दिनी द्वितीय भाग ।=)देवपूजन~) देशीकरघा ॥) धनुर्वेद संहिता ।) नवीन रत्नाकर भजनावली)। न्याय दर्शन ~) पारिवारिक प्रबन्ध१) प्रयाग माहात्म्य ॥=) प्रवासी =) बारहमासी ~) बालहित ~)॥ भक्तसर्वस्व =) भजनगोरक्षाप्रकाश मञ्जरी)॥ मानस मञ्जरी ।) मेगास्थनीजका भारतवर्षीय वर्णन ॥=) मङ्गलदेव पराजय =) रागरत्नाकर २) रामगीता ≥) राशिमाला)॥ वसंतशृङ्गार ≥) वारेन्हेस्टिङ्गकी जीवनी १) वीरबाला ।॥) वैष्णवरहस्य)॥ शारीरिक-भाष्य ।) शास्त्रीजीके दो व्याख्यान ॥=) सारमञ्जरी ।)सिद्धान्तकौमुदी २)सिद्धान्तपटल ~) सुजान चरित्र २) सुनारी ।) सुबोध व्याकरण ।) सुश्रुत संस्कृत ३) संध्यावन्दन भाष्य ॥) हनुमज्ज्योतिष =) हनुमान-चालीसा)। हिन्दी पहिली किताब)॥ क्षत्रियहितैषिणी ~)

नोट-पचीस रुपयोंसे अधिककी पुस्तक खरीदनेवालेको योग्य कमी-शन भी दिया जायगा ।

शीघ्र छपने योग्य ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यकी पुष्टिके अभिप्रायसे तथा धर्मप्रचारकी शुभ वासनासे निम्नलिखित ग्रन्थ छापनेको तैयार हैं। यथाः-भरद्वाजकृत कर्ममीमांसादर्शनके भाषाभाष्यका प्रथम खंड, सांख्यदर्शनका भाषाभाष्य । मैनेजर, निगमागम बुकडीपो,

महामण्डलभवन, जगतगंज, बनारस ।

श्रीमहामण्डलका शास्त्रप्रकाशकविभाग ।

यह विभाग बहुत विस्तृत है । अपूर्व संस्कृत, हिन्दी, बंगला और अंग्रेजीकी पुस्तकें काशी प्रधान कार्य्यालय जगतगंज में मिलती हैं और उर्दूसिरीज फीरोजपुर (पञ्जाब) दफ्तरमें मिलती है और इसी प्रकार अन्यान्य प्रान्तीय कार्य्यालयोंमें प्रान्तीय भाषाओंके ग्रन्थोंका प्रबन्ध हो रहा है । सेक्रेटरी श्रीभारतधर्म्म महामण्डल,

जगतगंज, बनारस ।

श्रीमहामण्डलस्थ उपदेशक-महाविद्यालय ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्यालय काशीमें साधु और गृहस्थ धर्मवक्ता प्रस्तुत करनेके अर्थ श्रीमहामण्डल उपदेशक महाविद्यालय नामक विद्यालय स्थापित हुआ है। जो साधुगण दार्शनिक और धर्मसम्बन्धी ज्ञान लाभ करके अपने साधु जीवनको कृतकृत्य करना चाहें और जो विद्वान् गृहस्थ धार्मिक शिक्षा लाभ करके धर्मप्रचार द्वारा देशकी सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना चाहें वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय,
जगत्गंज, बनारस (छावनी)।

श्रीभारतधर्म महामण्डलमें नियमित धर्मचर्चा ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल धर्मपुरुषार्थमें जैसा अग्रसर हो रहा है, सर्वत्र प्रसिद्ध है। मण्डलके अनेक पुरुषार्थोंमें 'उपदेशक महाविद्यालय' की स्थापना भी गणना करने योग्य है। अच्छे धार्मिक वक्ता इसमें निर्माण हुए, होते हैं और होते रहेंगे ऐसा इसका प्रबन्ध हुआ है। अब इसमें दैनिक पाठ्यक्रमके अतिरिक्त यह भी प्रबन्ध हुआ है कि रात्रिके समय महीनेमें दस दिन व्याख्यान-शिक्षा, दस दिन शास्त्रार्थ-शिक्षा और दस दिन सङ्गीत-शिक्षा भी दी जाया करे। वक्तृताके लिये संगीतका साधारण ज्ञान होना आवश्यक है और इस पञ्चम वेदका (शुद्ध सङ्गीतका) लोप हो रहा है। इस कारण व्याख्यान और शास्त्रार्थ-शिक्षाके साथ सङ्गीत-शिक्षाका भी समावेश किया गया है। सर्व साधारण भी इस धर्मचर्चाका यथा समय उपस्थित होकर लाभ उठा सकते हैं।

निवेदक—सेक्रेटरी महामण्डल,
जगत्गंज, बनारस।

हिन्दूधार्मिक विश्वविद्यालय ।
(श्री शारदामण्डल)

हिन्दुजातिकी विराट् धर्मसभा श्रीभारतधर्ममहामण्डलका यह विद्यादान विभाग है। वस्तुतः हिन्दुजातिके पुनरभ्युदय और हिन्दुधर्मकी शिक्षा सारे भारतवर्षमें फैलानेके लिये यह विश्व-

विद्यालय स्थापित हुआ है। इसके प्रधानतः निम्न लिखित पाँच कार्य विभाग हैं।

(१) श्री उपदेशक महाविद्यालय (हिन्दू कालेज ओफ डिविनिटी) इस महाविद्यालयके द्वारा योग्य धर्मशिक्षक और धर्मोपदेशक तैयार किये जाते हैं। अंग्रेजी भाषाके बी० ए० पास अथवा संस्कृत भाषाके शास्त्री आचार्य्य आदि परीक्षाओंकी योग्यता रखनेवाले पण्डित ही छात्र रूपसे इस महाविद्यालयमें भरती किये जाते हैं। छात्रवृत्ति २५) माहवार तक दी जाती है।

(२) धर्मशिक्षाविभाग। इस विभागके द्वारा भारतवर्षके प्रधान प्रधान नगरोंमें ऊपर लिखित महाविद्यालयसे परीक्षोत्तीर्ण एक एक पण्डित स्थायीरूपसे नियुक्त करके उक्त नगरोंके स्कूल, कालेज और पाठशालाओंमें हिन्दुधर्म्मकी धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाता है। वे पण्डितगण उन नगरोंमें सनातनधर्म्मका प्रचार भी करते रहते हैं। ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है कि जिससे महामण्डलके प्रयत्नसे सब बड़े बड़े नगरोंमें इस प्रकार धर्मकेन्द्र स्थापित हों और वहाँ मासिक सहायता भी श्रीमहामण्डलकी ओरसे दी जाय।

(३) श्री आर्यमहिलामहाविद्यालय भी इसी शारदामण्डलका अंग समझा जायगा और इस महाविद्यालयमें उच्च जातिकी विधवाओंके पालन पोषणका पूरा प्रबन्ध करके उनको योग्य धर्मोपदेशिका, शिक्षयित्री और गवर्नेस आदिके काम करनेके उपयोगी बनाया जायगा।

(४) सर्व्वधर्मसदन (हाल आफ आल रिलिजन्स) इस नामसे यूरोप-महायुद्धके बाद शान्तिके स्मारक रूपसे एक संस्था स्थापित करनेका प्रबन्ध हो रहा है। यह संस्था श्रीमहामण्डलके प्रधान कार्य्यालय तथा उपदेशक महाविद्यालयके निकट ही स्थापित होगी। इस संस्थाके एक ओर सनातन धर्म्मके अतिरिक्त सब प्रधान २ धर्ममतोंके उपासनालय रहेंगे जिनमें उक्त धर्म्मोंके जाननेवाले एक एक विद्वान् रहेंगे। दूसरी ओर सनातनधर्म्मके पञ्चोपासनाके पाँच देवस्थान और लीलाविग्रह उपासना आदिके देवमन्दिर रहेंगे। इसी संस्थामें एक बृहत् पुस्तकालय रहेगा कि जिसमें पृथिवी भरके सब धर्ममतोंके धर्मग्रन्थ रक्खे जायंगे और इसी संस्थासे

संश्लिष्ट एक व्याख्यानालय और शिक्षालय (हाल) रहेगा जिसमें उक्त विभिन्न धर्म्मों के विद्वान् तथा सनातन धर्मके विद्वान्गण यथाक्रम व्याख्यानादि देकर धर्म्मसम्बन्धीय अनुसन्धान तथा धर्मशिक्षा-कार्य्यकी सहायता करेंगे। यदि पृथिवीके अन्य देशोंसे कोई विद्वान् काशीमें आकर इस सर्व्वधर्म्मसदनमें दार्शनिक शिक्षा लाभ करना चाहेंगे तो उसका भी प्रबन्ध रहेगा।

(५) शास्त्र प्रकाश विभाग। इस विभागका कार्य स्पष्ट ही है। इस विभागसे धर्म्मशिक्षा देनेके उपयोगी नाना भाषाओंकी पुस्तकें तथा सनातनधर्म्मकी सब उपयोगी मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं और होंगी।

इस प्रकारसे पाँच कार्य्यविभाग और संस्थाओंमें विभक्त होकर श्री शारदामण्डल सनातनधर्म्मावलम्बियोंकी सेवा और उन्नति करनेमें प्रवृत्त रहेगा। प्रधान मंत्री—श्रीभारतधर्म्म महामण्डल
प्रधान कार्यालय, बनारस।

श्रीमहामण्डलके सभ्योंको विशेष सुविधा।

हिन्दू समाजकी एकता और सहायताके लिये विराट् आयोजन।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल हिन्दू जातिकी अद्वितीय धर्म्ममहासभा और हिन्दू समाजकी उन्नति करनेवाली भारतवर्षके सकल प्रान्त व्यापी संस्था है। श्रीमहामण्डलके सभ्य महोदयोंको केवल धर्म्म शिक्षा देना ही इसका लक्ष्य नहीं है; किन्तु हिन्दू समाजकी उन्नति, हिन्दूसमाजकी दृढ़ता और हिन्दू समाजमें पारस्परिक प्रेम और सहायताकी वृद्धि करना भी इसका प्रधान लक्ष्य है इस कारण निम्नलिखित नियम श्रीमहामण्डलकी प्रबन्ध-कारिणी सभाने बनाये हैं। इन नियमोंके अनुसार जितने अधिक संख्यक सभ्य महामण्डलमें सम्मिलित होंगे उतनी ही अधिक सहायता महामण्डलके सभ्य महोदयोंको मिल सकेगी। ये नियम ऐसे सुगम और लोकहितकर बनाये गये हैं कि श्रीमहामण्डलके जो सभ्य होंगे उनके परिवारको बड़ी भारी एककालिक दानकी सहायता प्राप्त हो सकेगी। वर्त्तमान हिन्दूसमाज जिस प्रकार दरिद्र होगया है उसके अनुसार श्रीमहामण्डलके ये नियम हिन्दू समाजके लिये बहुत ही हितकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं।

श्रीमहामण्डलके मुखपत्रसम्बन्धी उपनियम।

(१) धर्मशिक्षाप्रचार, सनातनधर्मचर्चा, सामाजिक उन्नति, सद्विद्याविस्तार, श्रीमहामण्डलके कार्य्योंके समाचारोंकी प्रसिद्धि और सभ्योंको यथासम्भव सहायता पहुंचाना आदि लक्ष्य रखकर श्रीमहामण्डलके प्रधान कार्य्यालय द्वारा भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें प्रचलित देशभाषाओंमें मासिकपत्र नियमितरूपसे प्रचार किये जायँगे।

(२) अभी केवल हिन्दी और अंगरेजी-इन दो भाषाओंके दो मासिकपत्र प्रधान कार्य्यालयसे प्रकाशित हो रहे हैं। यदि इन नियमोंके अनुसार कार्य्य करनेपर विशेष सफलता और सभ्योंकी विशेष इच्छा पाई जायगी तो भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी देश भाषाओंमें भी क्रमशः मासिकपत्र प्रकाशित करनेका विचार रक्खा गया है। इन मासिकपत्रोंमेंसे प्रत्येक मेम्बरको एक एक मासिकपत्र, जो वे चाहेंगे, विना मूल्य दिया जायगा। कमसे कम दो हजार सभ्य महोदयगण जिस भाषाका मासिकपत्र चाहेंगे; उसी भाषामें मासिकपत्र प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया जायगा, परन्तु जबतक उस भाषाका मासिकपत्र प्रकाशित न हो तबतक श्रीमहामण्डलका हिन्दी अथवा अंगरेजीका मासिकपत्र विना मूल्य दिया जायगा।

(३) श्रीमहामण्डलके साधारण सभ्योंको वार्षिक दो रुपये चन्दा देनेपर इन नियमोंके अनुसार सब सुविधाएँ प्राप्त होंगी। श्रीमहामण्डलके अन्य प्रकारके सभ्य जो धर्म्मोन्नति और हिन्दूसमाजकी सहायताके विचारसे अथवा अपनी सुविधाके विचारसे इस विभागमें स्वतन्त्र रीतिसे कमसे कम २ दो रुपये वार्षिक नियमित चन्दा देंगे वे भी इस कार्य्यविभागकी सब सुविधाएँ प्राप्त कर सकेंगे।

(४) इस विभागके रजिस्टरदर्ज सभ्योंको श्रीमहामण्डलके अन्य प्रकार सभ्योंकी रीतिपर श्रीमहामण्डलसे सम्बन्धयुक्त सब पुस्तकादि अपेक्षाकृत स्वल्प मूल्यपर मिला करेंगी।

समाजहितकारी कोष।

(यह कोष श्रीमहामण्डलके सब प्रकारके सभ्योंके—जो इसमें

सम्मिलित होंगे—निर्वाचित व्यक्तियोंको आर्थिक सहायताके लिये खोला गया है)

(५) जो सभ्य प्रतिवर्ष नियमित चन्दा देते रहेंगे उनके देहान्त होने पर जिनका नाम वे दर्ज करा जायंगे, श्रीमहामण्डलके इस कोष द्वारा उनको आर्थिक सहायता मिलेगी।

(६) जो मेम्बर कमसे कम तीन वर्ष तक मेम्बर रहकर लोकान्तरित हुए हों, केवल उन्हीके निर्वाचित व्यक्तियोंको इस समाजहितकारी कोषकी सहायता प्राप्त होगी, अन्यथा नहीं दी जायगी।

(७) यदि कोई सभ्य महोदय अपने निर्वाचित व्यक्तिके नामको श्रीमहामण्डल प्रधानकार्यालयके रजिस्टरमें परिवर्त्तन कराना चाहेंगे तो ऐसा परिवर्त्तन एकवार विना किसी व्ययके किया जायगा। उसके बाद वैसा परिवर्त्तन पुनः कराना चाहें तो।) भेजकर परिवर्त्तन करा सकेंगे।

(८) इस विभागमें साधारण सभ्यों और इस कोषके सहायक अन्यान्य सभ्योंकी ओरसे प्रतिवर्ष जो आमदनी होगी उसका आधा अंश श्रीमहामण्डलके छपाई-विभागको मासिकपत्रोंकी छपाई और प्रकाशन आदि कार्य्यके लिये दिया जायगा। वाकी आधा रुपया एक स्वतन्त्र कोषमें रक्खा जायगा जिस कोषका नाम "समाजहितकारी कोष" होगा।

(९) "समाजहितकारी कोष" का रुपया बैंक आफ बंगाल अथवा ऐसे ही विश्वस्त बैंकमें रक्खा जायगा।

(१०) इस कोषके प्रबन्धके लिये एक खास कमेटी रहेगी।

(११) इस कोषकी आमदनीका आधा रुपया प्रतिवर्ष इस कोषके सहायक जिन मेम्बरोंकी मृत्यु होगी, उनके निर्वाचित व्यक्तियोंमें समानरूपसे बाँट दिया जायगा।

(१२) इस कोषमें वाकी आधे रुपयोंके जमा रखनेसे जो लाभ होगा, उससे श्रीमहामण्डलके कार्यकर्ताओं तथा मेम्बरोंके क्लेशका विशेष कारण उपस्थित होनेपर उन क्लेशोंको दूर करनेके लिये कमेटी व्यय कर सकेगी।

(१३) किसी मेम्बरकी मृत्यु होनेपर वह मेम्बर यदि किसी महामण्डलकी शाखासभाका सभ्य हो अथवा किसी शाखासभाके निकटवर्त्ती स्थानमें रहनेवाला हो तो उसके निर्वाचित व्यक्तिका

फर्ज होगा कि वह उक्त शाखासभाकी कमेटीके मन्तव्यकी नकल श्रीमहामण्डल प्रधान कार्य्यालयमें भिजवावे। इस प्रकारसे शाखा सभाके मन्तव्यकी नकल आनेपर कमेटी समाजहितकारी कोषसे सहायता देनेके विषयमें निश्चय करेगी।

(१४) जहाँ कहीं सभ्योंको इस प्रकारकी शाखासभाकी सहायता नहीं मिल सकती है या जहाँ कहीं निकट शाखासभा नहीं है ऐसी दशामें उस प्रान्तके श्रीमहामण्डलके प्रतिनिधियोंमेंसे किसीके अथवा किसी देशी रजवाड़ोंमें हो तो उक्त दर्बारके प्रधान कर्म्मचारीका सार्टिफिकेट मिलनेपर सहायता देनेका प्रबन्ध किया जायगा।

(१५) यदि कमेटी उचित समझेगी तो वाला २ खबर मंगाकर सहायता देनेका प्रबन्ध करेगी, जिससे कार्य्यमें शीघ्रता हो।

अन्यान्य नियम।

(१६) महामण्डलके अन्य प्रकारके सभ्योंमेंसे जो महाशय हिन्दूसमाजकी उन्नति और दरिद्रोंकी सहायताके विचारसे इस कोषमें कमसे कम २) दो रुपये सालाना सहायता करनेपर भी इस फण्डसे फायदा उठाना नहीं चाहेंगे वे इस कोषके परिपोषक समझे जायंगे और उनकी नामावली धन्यवादसहित प्रकाशित की जायगी।

(१७) हर एक साधारण मेम्बरको—चाहे स्त्री हो या पुरुष—प्रधान कार्यालयसे एक प्रमाणपत्र—जिसपर पञ्चदेवताओंकी मूर्ति और कार्यालयकी मुहर होगी—साधारण मेम्बरके प्रमाणरूपसे दिया जायगा।

(१८) इस विभागमें जो चन्दा देंगे उनका नाम नम्बरसहित हर वर्ष रसीदके तौरपर वे जिस भाषाका मासिकपत्र लेंगे, उसमें छापा जायगा। यदि गलतीसे किसीका नाम न छपे तो उनका फर्ज होगा कि प्रधान कार्यालयमें पत्र भेजकर अपना नाम छपावें क्योंकि यह नाम छपना ही रसीद समझी जायगी।

(१९) प्रतिवर्षका चन्दा २) मेम्बर महाशयोंको जनवरी महीनेमें आगामी भेज देना होगा। यदि किसी कारण विशेषसे जनवरीके अन्ततक रुपया न आवे तो और एक मास अर्थात् फरवरी

मासतक अवकाश दिया जायगा और इसके बाद अर्थात् मार्च महीनेमें रुपया न आनेसे मेम्बर महाशयका नाम काट दिया जायगा और फिर वे इस समाजहितकारी कोषसे लाभ नहीं उठा सकेंगे।

(२०) मेम्बर महाशयका पूर्व नियमके अनुसार नाम कट जानेपर यदि कोई असाधारण कारण दिखाकर वे अपना हक़ साबित रखना चाहेंगे तो कमेटीको इस विषयमें विचार करनेका अधिकार मई मासतक रहेगा और यदि उनका नाम रजिस्टरमें पुनः दर्ज किया जायगा तो उन्हें ।) हर्जाना समेत चन्दा अर्थात् २।) देकर नाम दर्ज करा लेना होगा।

(२१) वर्षके अन्दर जब कभी कोई नये मेम्बर होंगे तो उनको उस सालका पूरा चन्दा देना होगा। वर्षारम्भ जनवरीसे समझा जायगा।

(२२) हर सालके मार्चमें परलोकगत मेम्बरोंके निर्वाचित व्यक्तियोंको 'समाज हितकारी कोष' की गत वर्षकी सहायता बांटी जायगी परन्तु नं १२के नियमके अनुसार सहायताके बांटनेका अधिकार कमेटीको सालभरतक रहेगा।

(२३) इन नियमोंके घटाने-बढ़ानेका अधिकार महामण्डलको रहेगा।

(२४) इस कोषकी सहायता 'श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय, काशी, से ही दी जायगी।

सेक्रेटरी श्रीभारतधर्ममहामण्डल, जगतगंज, बनारस।

श्रीविश्वनाथ-अन्नपूर्णादान-भण्डार।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशीमें दीनदुःखियोंके क्लेशनिवारणार्थ यह सभा स्थापित की गई है। इस सभाके द्वारा अतिविस्तृत रीतिपर शास्त्र प्रकाशनका कार्य्य प्रारम्भ किया है। इस सभाके द्वारा धर्मपुस्तिका पुस्तकादि यथासम्भव विना मूल्य वितरण करनेका भी विचार रक्खा गया है। इस दानभण्डारके द्वारा महामण्डल द्वारा प्रकाशित तत्त्वबोध, साधुओंका कर्तव्य, धर्म और धर्माङ्ग, दानधर्म, नारी धर्म, महामण्डलकी आवश्यकता आदि कई एक हिन्दीभाषाके धर्मग्रन्थ और अंग्रेजी भाषाके कईएक ट्रैक्ट विना मूल्य योग्य पात्रोंको बांटे जाते हैं। पत्राचार करनेपर

विदित हो सकेगा। शास्त्र प्रकाशनकी आमदनी इसी दानभण्डारमें दीनदुःखियोंके दुःखमोचनार्थ व्यय की जाती है। इस सभामें जो दान करना चाहें या किसी प्रकारका पत्राचार करना चाहें वे निम्न लिखित पते पर पत्र भेजें।

सेक्रेटरी, श्रीविश्वनाथ-अन्नपूर्णादानभण्डार,
श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्य्यालय।
जगतगंज बनारस (छावनी)

आर्यमहिलाके नियम।

१—श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की मुखपत्रिकाके रूपमें आर्यमहिला प्रकाशित होती है।

२—महापरिषद्की सब प्रकारकी सभ्या महोदयाओं और सभ्य महोदयोंको यह पत्रिका बिना मूल्य दी जाती है। अन्य ग्राहकोंको ६) वार्षिक अग्रिम देनेपर प्राप्त होती है। प्रति संख्याका मूल्य १॥) है।

३—पुस्तकालयों (पब्लिक लाइब्रेरियों) वाचनालयों (रीडिंग रूमों) और कन्या पाठशालाओंको केवल ३) वार्षिकमें ही दी जाती है।

४—किसी लेखको घटाने बढ़ाने और प्रकाशित करने न करनेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादिका को है।

५—योग्य लेखकों तथा लेखिकाओंको नियत पारतोषिक दिया जाता है और विशेष योग्य लेखकों तथा लेखिकाओंको अन्यान्य प्रकार से भी सम्मानित किया जाता है।

६—हिन्दी लिखनेमें असमर्थ मौलिक लेखक लेखिकाओंके लेखोंका अनुवाद कार्यालयसे कराकर छापा जाता है।

७—माननीया श्रीमती सम्पादिकाजीने काशीके विद्वानोंकी एक समिति स्थापित की है, जो पुस्तकें आदि समालोचनार्थ कार्यालयमें पहुचेंगी उनपर यह समिति विचार करेगी। जो पुस्तकें आदि योग्य समझी जायंगी उनके नाम पता और विषय आदि आर्यमहिलामें प्रकाशित कर दिये जायंगे।

८—समालोचनार्थ पुस्तकें, लेख, परिवर्तनकी पत्र-पत्रिकाएँ, कार्य्यालय-सम्बन्धी पत्र, छापने योग्य विज्ञापन और रुपया तथा

महापरिषत्सम्बन्धी पत्र आदि सब निम्नलिखित पतेपर आने चाहियें।

कार्य्याध्यक्ष, आर्यमहिला तथा महापरिषत्कार्यालय,
श्रीमहामण्डल भवन, जगत्गञ्ज, बनारस।

आर्यमहिला महाविद्यालय।

इस नामका एक महाविद्यालय (कालेज) जिसमें विधवा-आश्रम भी शामिल रहेगा श्री आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद् नामक सभाके द्वारा स्थापित हुआ है जिसमें सत्कुलोद्भव उच्च जातिकी विधवाएँ मासिक १५) से २०) तक वृत्ति देकर भरती की जाती हैं और उनको योग्य शिक्षा देकर हिन्दू धर्मकी उपदेशिका, शिक्षयित्री आदि रूपसे प्रस्तुत किया जाता है। भविष्यत् जीविकाका उनके लिये यथायोग्य प्रबन्ध भी किया जाता है। इस विषयमें यदि कुछ अधिक जानना चाहें तो निम्नलिखित पतेपर पत्र व्यवहार करें।

प्रधानाध्यापक—आर्यमहिला महाविद्यालय
महामण्डल भवन जगतगंज बनारस।

बंगलाके धर्मग्रन्थ।

श्रीमहामण्डल प्रकाशित बंग भाषाके धर्मग्रन्थ कलकत्ता प्रान्तीय कार्यालयसे यहां मंगालिये गये हैं उनकी नामावली निम्नलिखित है।

मन्त्रयोग संहिता	॥।)	पुराण तत्त्व	॥।=)
जातीय महायज्ञ साधन	॥।)	धर्म	।=)
देवीमीमांसा दर्शन १ म खण्ड	॥)	साधन तत्त्व	॥।)
गुरुगीता	=)	जन्मान्तर तत्त्व	॥=)
तत्त्वबोध	=)	आर्यजाति	॥।)
साधन सोपान	=)	नारी धर्म	१)
सदाचार सोपान	-)	सदाचार शिक्षा	।=)
कन्याशिक्षा सोपान	-)	नीतिशिक्षा (यन्त्रस्थ)	

मैनेजर निगमागम बुकडीपो—
महामण्डलभवन जगतगंज काशी।

प्रतिदिन सत्संग ।

श्रीमहामण्डलमें नित्य धर्मचर्चा ।
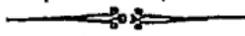
धर्मविज्ञानवृद्धि और प्रतिदिन सत्संगके विचारसे श्रीभारतधर्ममहामण्डलने यह प्रबन्ध किया है कि उसके प्रधान कार्यालयके जगत्गंजमें स्थित भवनमें प्रतिदिन अपराह्णकालसे दियावत्तीके समय तक एक घण्टा धर्मजिज्ञासुओंका सत्संग नियमित हुआ करे । उस सत्संगसभामें श्रीमहामण्डलके साधुगण, विद्वान् पण्डितगण और उपदेशक महाविद्यालयके छात्रगण उपस्थित रहकर प्रश्नोत्तर, शङ्कासमाधान आदिरूपसे सत्संग करेंगे । धर्मजिज्ञासु सर्वसाधारण सज्जन भी उसमें सम्मिलित होकर श्रवण तथा जिज्ञासा द्वारा सत्संगका लाभ उठा सकेंगे । आर्यमहिलामहाविद्यालयकी छात्रिगण भी इसमें उपस्थित रह सकेंगी इस कारण धर्मजिज्ञासाकी इच्छा रखनेवाली आर्यमहिलागण भी इसमें सम्मिलित हो सकेंगी । धर्मजिज्ञासा और सत्संगकी इच्छा रखनेवाले सज्जन तथा माताएँ इस शुभ कार्यमें सम्मिलित होकर लाभ उठावें यही प्रार्थना है ।

स्वामी दयानन्द प्रधानाध्यापक,
'उपदेशक महाविद्यालय'
श्रीमहामण्डल भवन, जगत्गंज, बनारस ।

एजन्टोंकी आवश्यकता ।

श्रीभारतधर्म महामण्डल और आर्य्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्के मेम्बरसंग्रह और पुस्तकविक्रय आदिके लिये भारतवर्षके प्रत्येक नगरमें एजन्टोंकी जरूरत है । एजन्टोंको अच्छा पारितोषिक दिया जायगा । इस विषयके नियम श्रीमहामण्डल प्रधान कार्य्यालयमें पत्र भेजनेसे मिलेंगे ।

सेक्रेटरी
श्रीभारतधर्म्म महामण्डल,
जगत्गंज, बनारस ।

भारतधर्म्म प्रेस ।

मनुष्यों की सर्वाङ्गीण उन्नति लिखने पढनेसे होता है। पहिले समयमें शिक्षा-प्रचारका कोई सुलभ साधन नहीं था; परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा-वृद्धिके जितने साधन उपलब्ध हैं, उनमें 'प्रेस' सबसे बढ़कर है।

सनातन धर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये भी इस साधनका अवलम्बन करना उचित जानकर श्रीभारतधर्ममहामण्डलने निजका

भारतधर्म्मनामक प्रेस ।

खोल दिया है। इसमें हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला और उर्दू का सब प्रकारका काम उत्तमतासे होता है। पुस्तक, पत्रिकाएं, हेंडबिल, लेटरपेपर, वालपोस्टर्स, चेक, बिल, हुण्डी, रसीदें, रजिस्टर, फार्म आदि छपवाकर इस प्रेस की छपाई की सुन्दरता का अनुभव कीजिये।

पत्र व्यवहार करने का पताः-

मैनेजर भारतधर्म्म प्रेस,

महामण्डल भवन

जगत्गंज, बनारस।